॥ श्री ॥

प्रवचन-पाटल



श्री श्री १००८ श्री लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज

॥ श्रीहरिः ॥



॥ श्री ॥

प्रवचन-पाटल

रचयिता

श्री श्री १००८ श्रीलक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज

अध्यक्ष एवं उत्तराधिकारी शिष्य

श्री धर्मसंघ शिक्षा मंडल

दुर्गाकुण्ड, वाराणसी (उ० प्र०)

॥ श्रीहरिः ॥

सम्पादक :

श्री श्री १०८ स्वामी सीतारामाचार्य

व्याकरणाचार्य साहित्यशास्त्री (आचारी जी)

श्रीजनकपुर धाम

सहसम्पादक :

आचार्य श्री पं० विवेकानन्द जी मिश्र (पयासी जी)

प्रकाशक :

श्रीमान् सेठ भाई रघुवर दयाल जी उदयराम जी अग्रवाल

वैतूलगंज, वैतूल (म० प्र०)

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान :

श्री श्री वेदान्ती स्वामीजी महाराज

धर्मसंघ शिक्षा मण्डल

दुर्गाकुण्ड, (वाराणसी)

सतीश चन्द्र श्रीवास्तव 'बाल भाई'

जगमोहन प्रिंटर्स

२९, हिन्दी साहित्य सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद (उ० प्र०)

द्वितीय आवृत्ति :

२०००

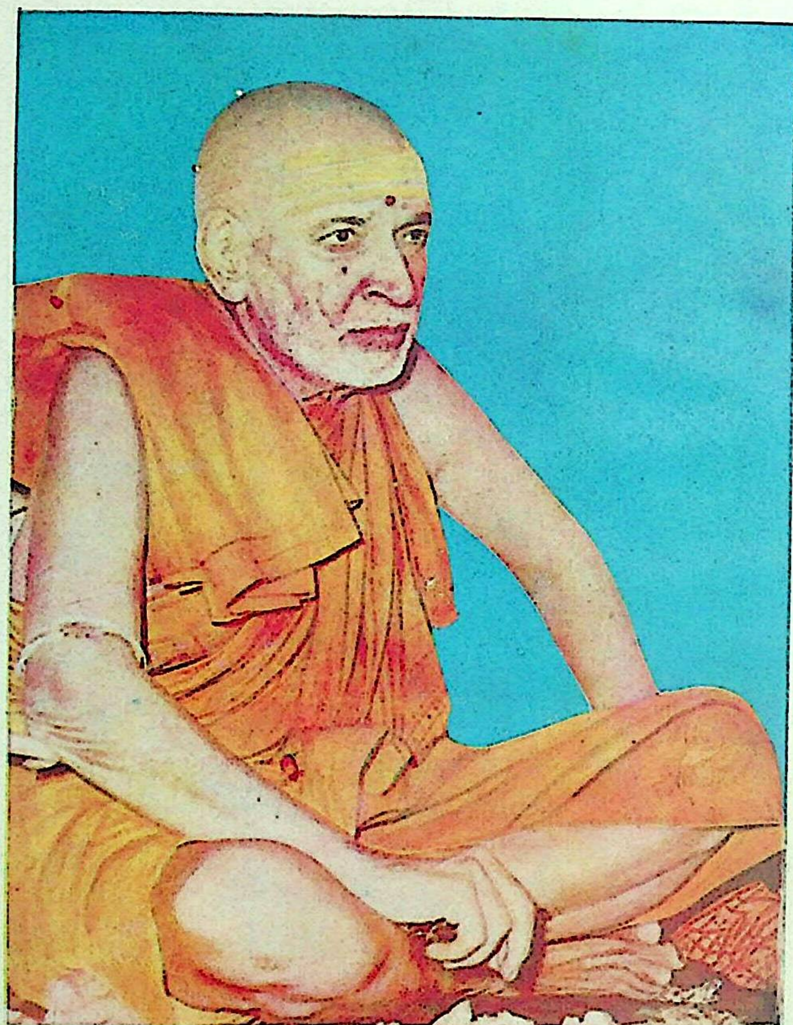
मूल्य—१५/-

मुद्रक :

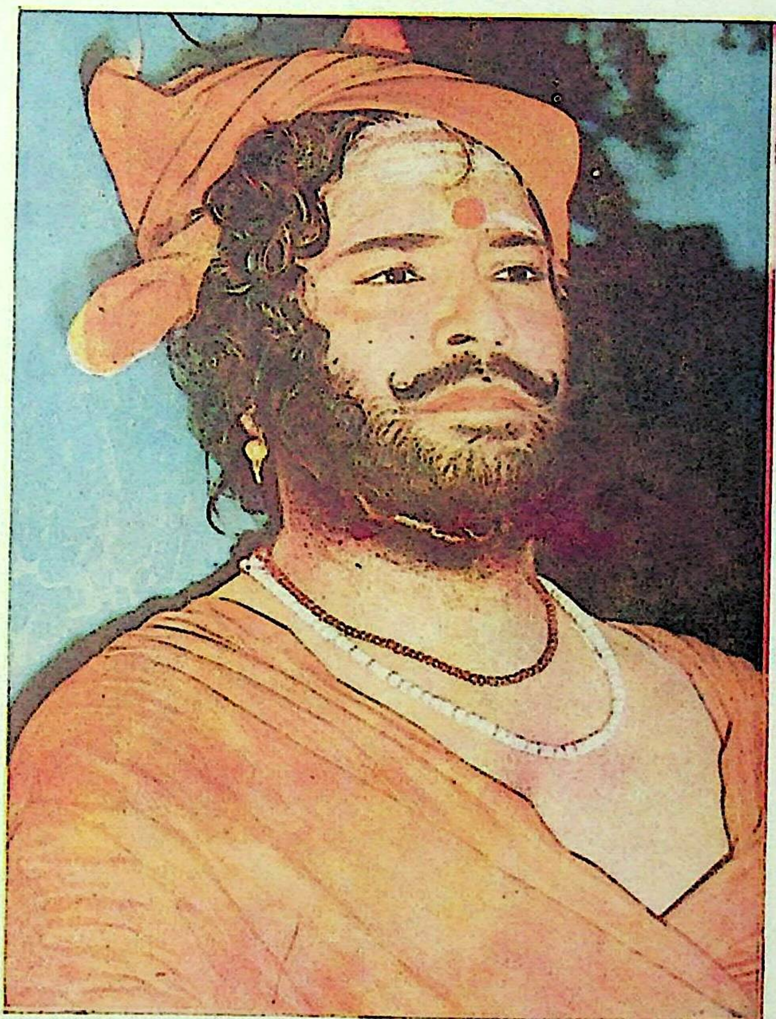
सतीश चन्द्र श्रीवास्तव 'बाल भाई'

जगमोहन प्रिंटर्स,

२९, हिन्दी साहित्य सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद (उ० प्र०)



अनंत श्री विभूषित धर्म सम्राट्
श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज



श्री श्री १००८ श्री लक्ष्मण चैतन्य
ब्रह्मचारीजी महाराज

॥ श्रीहरिः ॥

भूमिका



सम्पूर्ण भारतवर्ष में आज २५ साल से श्री श्री १००८ श्री लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारीजी महाराज के साथ भ्रमण करते सर्वत्र सनातन धर्म का प्रचार-प्रसार करते हुए अक्सर लोगों के मुख से वार-वार यह शिकायत होती थी कि आप सब जो धार्मिक विचार प्रकट कर जाते हैं, किञ्चित् काल वाद वे विस्मृत हो जाते हैं।

श्री ब्रह्मचारी जी महाराज के अति ओजस्वी सारगर्भित तथा अनुसन्धानपूर्ण प्रवचनों को सुनकर प्रजाजनों के कल्याणार्थ इसकी प्रतिलिपि करने का निवेदन किया। महाराज श्री से हमने आग्रह किया कि शोधपूर्ण प्रवचनों पर आप कुछ लिखिए। शेष, हम संकलित कर लेगें। अनुरोध करने पर महाराज श्री ने अपने खोजपूर्ण निवन्धों पर प्रकाश डाला। जो **श्री प्रवचन-पाटल** के स्वरूप में आप के हाथों में हैं।

इस ग्रन्थ में समस्त विचारों को समयाभाव के कारण भर नहीं सके। इसलिए जो कुछ भी हो सका है, सब जन-कल्याणार्थं ही हैं।

भक्तजनों के अधिकाधिक माँग के कारण पहला संस्करण बहुत थोड़े ही समय में समाप्त हो जाने से इसका पुनः दूसरा संस्करण श्री ब्रह्मचारी जी महाराज के सुयोग्य शिष्य स्वनाम धन्य भगवद्रसरसिक श्रीमान् सेठ रघुवर दयाल उदयराम जी अग्रवाल के पुण्य सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

भगवान् श्रीकाशी विश्वनाथजी उनके सपरिवार का कल्याण मंगल सदा करते हुए इसी तरह की शुभ प्रेरणा देते रहें, यही सतत हमारी शुभकामना है।

प्रयाग निवासी स्वर्गीय श्री जगमोहनलाल जी के प्रिय आत्मज श्री सतीशचन्द्रजी श्रीवास्तव (श्रीमान् बाल भाई) इसके मुद्रापण में दिन-रात अथक परिश्रम करके इसे मुद्रित कराया है।

भगवान् श्रीकाशी विश्वनाथ जी सब परिवार समेत इन्हें भी सव प्रकार से स्वस्थ एवञ्च परम प्रसन्न रक्खें, यही शुभ मंगलमय कामना है।

अतः अन्त में उन सबका सादर आभार मानकर श्री महाकाल प्रभु से विश्व कल्याण की प्राथंना करते हुए यह श्री प्रवचन-पाटल प्रभु को सादर समर्पित है।

शुभेच्छुः

सीतारामाचार्य शास्त्री

व्याकरणाचार्य साहित्यशास्त्री, श्रीजनकपुरधाम निवासी

अध्यक्ष अ. भा. धर्मसंघ पण्डाल

सिंहस्थ-उज्जैन

॥ श्रीहरिः ॥



प्रकाशकीय वक्तव्य

धर्मप्रेमी सज्जनवृन्द !

भगवान् आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की महती कृपा से सन्त महापुरुषों का नगरी में शुभागमन तथा उनके द्वारा सर्वजन कल्याणार्थ श्रीरामायण भागवत गीता महाभारत वेद उपनिषद् स्मृति आदि समस्त सद्ग्रन्थों के माध्यम से सनातन धर्म के प्रवल प्रचार-प्रसार हेतु समय-समय पर अमृतमय सदुपदेश होते रहते हैं।

इस वर्ष भगवान् की असीम अनुकम्पा से इस नगर में १४ वर्ष वाद पुनः विश्वविख्यात सनातन धर्म सम्राट् पूज्यपाद ब्रह्मलीन अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज के परम कृपाभाजन श्री श्री १००८ श्रीलक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारीजी महाराज का शुभागमन एवञ्च श्रावणी पूर्णिमा पर्यन्त वड़े ही समुल्लास के साथ अति ओजस्वी-सारगर्भित धार्मिक प्रवचन तथा भगवत्पूजन द्वारा जनता जर्नादन ने इस ज्ञान गंगा में नित्य मञ्जन का पूर्ण पुण्य लाभ प्राप्त किया।

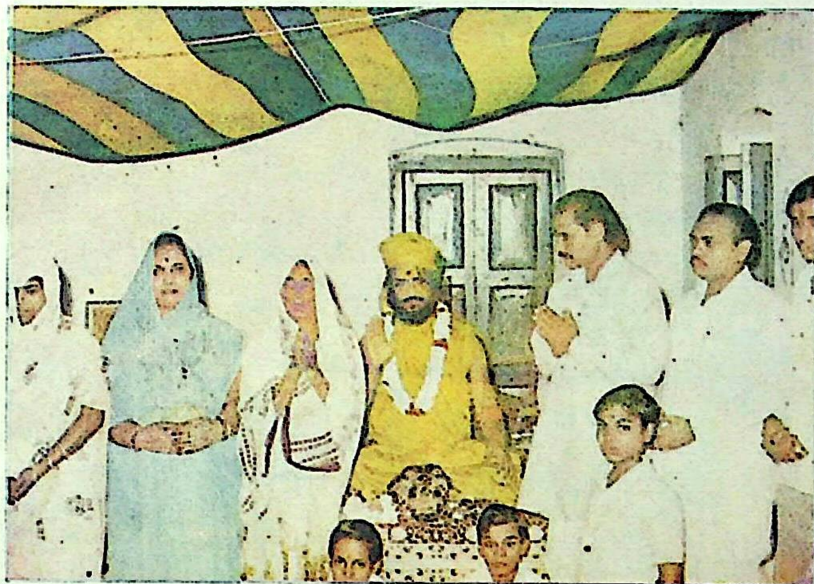
इन्हीं प्रसंगों में पूज्य स्वामी श्री श्री १००८ श्री लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारीजी द्वारा रचित श्री प्रवचन पाटल नामक ग्रन्थ का मैंने अवलोकन किया। मेरे मन में भगवत्कृपा से पुनः इसे प्रकाशित कराने की शुभ प्रेरणा हुई। अतः समस्त धार्मिकजगत् के जन-जन के कल्याणार्थ भक्तजनों के पुरजोर शुभाग्रहवशात् इसे प्रकाशित कराया जा रहा है।

इसके प्रूफ संशोधन में पूर्ण मनोयोग से लेखन कार्य सम्पादन किया गया है। फिर भी यदि कुछ त्रुटि रह गई हो, विज्ञ पाठकजन स्वयं सुधार लेंगे। एवञ्च आगे भी आप सभी सज्जनों की अधिक पठन-पाठन में रुचि हुई तो इसका अगला संस्करण आप सब की सेवा में समुपस्थित होगा। शेष भगवत्कृपा इतिशम्।

प्रकाशक

स्वनाम धन्य श्रीमान् सेठ भाई रघुवर दयालजी उदयरामजी अग्रवाल

वैतूलगंज, वैतूल (म० प्र०)



दानवीर

श्रीमान् सेठ भाई रघुवर दयालजी
उदयरामजी अग्रवाल सपरिवार सहित

॥ मंगलाचरण ॥

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहोनालदण्डः ।
क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः ।
ज्योतिश्चक्राक्षदण्डस्त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः
श्रेयस्त्रै विक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः ॥१॥

करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणिः
तरुणतिमिरनीलव्यालयज्ञोपवीती ।
क्रतुसमयसपर्याविघ्नविच्छेदहेतु
र्जयति वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥२॥

युष्माकं काचिदन्या जगदुपरिसमुद्भूतलावण्यवन्या ।
धन्या शैलेन्द्रकन्या त्रिभुवनजननी विश्वमान्यावदान्या ॥
निश्शंकं शङ्कराङ्के तडिदिव लसिता प्रोल्लसन्तीहसन्ती ।
रक्षादक्षाविपक्षावलिविलयकरी शाङ्करी शङ्करोतु ॥३॥

जयति रघुवंश तिलकः कौशल्याहृदयनन्दनोरामः ।
दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः ॥४॥

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय ।
तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय ॥५॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यैच तस्यैजनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥६॥

नारायणसमारम्भां शङ्कराचार्य मध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥७॥

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्य कृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥८॥

नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय ।
भक्तजनमानसनिवासाय श्रीमद्रामचन्द्राय ॥९॥

धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो ॥

हर हर महादेव ।

श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीसियावर रामचन्द्र महाराज की जय ॥

॥ श्रीहरिः ॥

महानुभाव !

न्यायवादी,धर्मात्मा, भगवद्भक्तमहापुरुषों का दर्शन बड़े ही सौभाग्य से होता है । ऐसे महाभागवत महापुरुष अपनी अहैतुकी कृपा से दर्शन देते हैं । उनका स्वभाव ही कृपा करना होता है। 'हेतु रहित जग युग उपकारी । तुम तुम्हार .सेवक असुरारी ॥' एकबार अपनी अहैतुकी कृपा से महाभागवत नव योगीश्वर, विदेहराज महाराज निमि के यज्ञ में पहुँचे । नारायण परायण महाभागवत सूर्य के समान तेजस्वी नव योगीश्वरों को अकस्मात् यज्ञ में आये हुए देखकर यजमान, अग्नि, ऋत्विक्, सदस्य आदि सभी हाथ जोड़कर खड़े हो गये । यजमान महाराजानिमि ने उन्हें आसन देकर पूजन किया और विनयावनत होकर परम प्रसन्नतापूर्वक उपदेश देते हुए कहा कि—

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रिय दर्शनम् ॥

(श्री. भा. म. पु. ११।१।२९)

इस अनन्तकोटियोजन विस्तृत महाब्रह्माण्ड में अनन्तानन्त प्राणी निवास करते हैं । सभी प्राणी अपने कायिक वाचिक मानसिक सांसर्गिक आदि पातकों का फल भोगने के लिए अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक अकारण करुण करुणावरुणालय कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तु (समर्थ छूँछी भरे, भरी ढरकावै, जब चाहे तब फेर भरावे) अर्थात् इस उक्ति के अनुसार भगवान द्वारा चौरासी लाख योनियों में डाले जाते हैं । इसमें कितने ही योनियों वाले प्राणी धरित्री तल में वास करते हैं, तथा कितने ही अगाध जल में वास करते हैं । कुछ वृक्षों पर भी निवास करते हैं । इतना ही क्यों ? कुछ अन्तरिक्ष लोक में कुछ स्वर्ग और कुछ पाताल में निवास करते हैं । कुछ नरक में निवास करते हैं और कुछ भुवर्लोक स्वर्लोक महः जनः तपः सत्यम् आदि लोकों में निवास करते हैं । ये तो एक ब्रह्माण्ड की बात हुई (ऐसे ही अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड हैं) वैज्ञानिकों का कहना है कि विश्व में सबसे तीव्र गति प्रकाश की है । वह एक सेकेण्ड में ७५ लाख मील की गति से चलता है तथा अनन्त आकाश में सौर मण्डल भी अनन्त हैं ।

उस सौर मण्डल के सूर्य का प्रकाश उसी वेग से लाखों वर्ष से इस धरातल पर आ रहे हैं । अब तक नहीं पहुँचे । उनके आने में लाखों वर्ष अभी लग जायेंगे । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि अनन्त-कोटिब्रह्माण्ड हैं । श्री गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—दिखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखण्ड । रोम रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्मांण्ड ।' भगवान् श्री रघुनाथजी ने अति शिशुरूप में ही अपनी कल्याणमयी करुणामयी पुत्रवत्सला जननी कौशल्या अम्बा को अपने रोम-रोम में ही अनन्त ब्रह्माण्डों का दर्शन करा दिया । उन्होंने देखा—"अगणित रवि शशि शिव चतुरानन । बहुगिरि सरित सिन्धु महि कानन ॥" काल कर्म गुन ज्ञान सुभाऊ । सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥ देखी माया सब विधि गाढ़ी ॥ अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी ॥" एक-एक ब्रह्माण्ड के देवता अभिमानी ब्रह्मा विष्णु-महेश-अनन्त रूपों में दीखे । भगवान की पार प्रकृति जीव समूह को देखा, और उसे माया में डाल कर संसार समुद्र में भटकाने वाली

माया को भी देखा । वह भगवान् के सम्मुख अत्यन्त डरी हुयी हाथ जोड़े खड़ी थी । माया कृत वन्धनों को तोड़कर संसार सागर से पार कराने वाली भक्ति को भी देखा । यह सब प्रपंच भगवान् के प्रति रोम में समाविष्ट ब्रह्माण्डों में देखा । यह भी जान लेना चाहिये कि ये ब्रह्माण्ड रोम के आदि में हैं मध्य में हैं अथवा अन्त में हैं ? रोम के ही अणु-अणु में ब्रह्माण्ड है । जैसे भगवान् अनन्त वैसे उनकी रोम राशि अनन्त और वैसे ही उनके एक-एक रोम भी अनन्त हैं । उनकी गणना नहीं की जा सकती । शास्त्र कहते हैं ।

'यो वा अनन्तस्य गुणाननन्तानुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः ।
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित् कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥

(श्री. भा. म. पु. ११।४।२)

जो प्राणी अजर अमर अनन्त अखण्ड भगवान् के गुणों कर्मों की गणना करना चाहता है, वह बालबुद्धि है अर्थात् मन्दमति है । सम्भव है कि कोई महामति अनन्त कल्पों की आयु लेकर पृथिवी के अणु अणु परमाणु परमाणु की गणना करने वैठे और समाप्ति काल में गणना पूरी करले । परन्तु; यह तो नितरां असम्भव है कि वह अनन्त भगवान् के अनन्त नामों गुणों कर्मों की गणना कर सके । ऋगवेद भी कहता है–

'विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः
पार्थिवानि विममे रजांसि ।'

(ऋक् संहिता १।१५४।१)

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कल्याणमयी करुणामयी पुत्रवत्सला अम्बायशोदा को अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का दर्शन कराया था—

रवं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ।
द्वीपान् नगान् तद्दुहितृर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्ग मानि ॥

(श्री. मा. म. पु. १०।७।३६)

तथा

'सा तत्र ददृशेविश्वं जगत्स्थास्नुचरनंदिशः ।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥३७॥
ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान् वियदेव च ।
वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनोमात्रा गुणास्त्रयः ॥३८॥
एतद् विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् ।
सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवापशङ्काम् ॥३९॥

(श्री. भा. म. पु. १०।८)

उस मुख में स्थावर जङ्गम सूर्य मण्डल चन्द्र मण्डल नक्षत्र मण्डल गगन भूधर सागर पर्वत वायु आकाश काल कर्म स्वभाव आदि देखकर माता यशोदा कल्पना करने लगीं कि क्या यह स्वप्न है ? अथवा कोई देव माया है ? अथवा कोई मेरा बुद्धि मोह है ? अथवा इस मेरे ललन का ही कोई जन्मजात स्वाभाविक आत्म योग है ? यह क्या वला है ?

'किं स्वप्न एतदुत देवमाया किंवा मदीयो बत बुद्धिमोहः ।
अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥
(श्री. भा. म. पु. १०।८।४०)

यह सब कहने का तात्पर्य यही है कि इन सभी ब्रह्माण्डों में चौरासी लाख योनियाँ भटक रही हैं। उन्हीं योनियों में पड़े जीव अपने कर्म बन्धन में जकड़े हुए जननमरणाविच्छेद लक्षण संसृति के अविच्छिन्न प्रवाह में पड़े हुए गोता खा रहे हैं। यहाँ—'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम् ॥ इह संसारे खलुदुस्तारे कृपयापारे पाहि मुरारे ॥ इस उक्ति के अनुसार जन्म के बाद मरना, मरने के वाद जन्म लेना वारम्वार माता के जठर में शयन करना यह अनादि काल से आरहा है। यह प्रभाव अभी तक पूरा नहीं। इसके टूटने के लिए एकमात्र अशरण शरण अकारणकरुण, करुणा-वरुणालय भगवान् के मङ्गलमय चरणों की शरण जाना चाहिए। 'भजगोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते ? भगवान् की प्राप्ति अन्य देवता दानव कूकर शूकर कीटपतङ्ग असुर राक्षसादि शरीरों से नहीं हो सकती, केवल मानव शरीर से ही हो सकती है। श्रीमद्भागवत का वचन है—

'सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान् ।
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥
(श्री. भा. म. पु. ११।९।२८)

अर्थात् भगवान् ने सृष्टि विस्तार के लिए अपनी अघटित घटना पटीयसी माया शक्ति से अनेक प्रकार के शरीररूप पुरों का निर्माण किया। वृक्षों का निर्माण किया। जो परोपकार का जाज्वल्यमान प्रतीक है। उसकी छाया में आतप सन्तप्त प्राणी विश्राम कर सकता है। उसके फूलों पत्तों से निवासस्थान और स्वयं अपने आप को सजा सकता है। उसके मधुर मनोहर फलों से अपनी तृप्ति कर सकता है। किन्तु, उसके निर्माण से भी प्रजापति को सन्तोष नहीं हुआ। कीड़े मकोड़े सर्प वृश्चिकादि शरीरों का निर्माण किया किन्तु, वे अत्यन्ततमोग्रस्त निकले। उसके निर्माण से भी प्रजापति को सन्तोष नहीं हुआ। अनेक प्रकार के पशु शरीरों का निर्माण किया, जो वहुधा मानव जीवनोपयोगी सिद्ध हुए, किन्तु; उससे भी प्रजापति को अत्यन्त सन्तोष नहीं हुआ। अनेक प्रकार के पक्षी शरीरों का निर्माण किया। जो उड़कर भूतल मात्र में नहीं, किन्तु; आकाश में भी, अपना अधिकार समझते हैं। उनके चित्र-विचित्र रंग-विरंगे पंख उनकी सुन्दर कोमल काकली मनमोहक होती है। परन्तु उसके, निर्माण से भी प्रजापति को सन्तोष नहीं हुआ। दंशक मच्छरशरीरों का भी निर्माण किया, किन्तु; वे लोग नितराँ शोषक रक्तचूषक निकले। इनकी रचना से भी प्रजापति को सन्तोष नहीं हुआ। अनेक प्रकार के मछली शरीरों का निर्माण किया, परन्तु;

इन सबके निर्माण से भी प्रजापति को सन्तोष नहीं हुआ। अन्त में प्रजापति ने मानवदेह का निर्माण किया। इसके निर्माण से ही प्रजापति को हार्दिक सन्तोष हुआ तथा वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। कारण यह है कि प्रजापति ने इस शरीर की क्षमता देखी कि इसमें प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परब्रह्म के अपरोक्ष साक्षात्कार की क्षमता है।

इसीलिए भगवान् ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा हैं कि—

'तासां मे पौरुषी प्रिया'

(श्री. भा. म. पु.)

माता पितृ शतादपि परम हितैषिणी भगवती श्रुति कहती हैं—

'पुरुषे त्वेवाविस्तिरामात्मा'

(ऐ. आ. २।३।२)

इस मानव शरीर में ही आत्मा का प्राकट्य होता है। इसी प्रकार एक दूसरी श्रुति कहती हैं कि प्रजापति ने इन्द्रियों के साथ ही इन्द्रियाधिष्ठात्री अग्नि आदि देवताओं का निर्माण किया। उन देवताओं ने कहा कि भगवन् हमें भोग के लिए शरीर चाहिए। प्रजापति ने उन्हें क्रमशः गाय का, फिर अश्व का, फिर मानव का शरीर उपस्थित किया। देवताओं ने कहा कि गाय के दाँत एक ही तरफ हैं, अतः दूर्वा आदि का ग्रहण हम ठीक तरह से इस शरीर से नहीं कर सकते। तब उन्हें दोनों तरफ दाँत वाला अश्व शरीर उपस्थित किया। फिर उन देवताओं ने कहा कि इसमें मस्तिष्क नहीं है। हम कुछ उन्नति इस शरीर से नहीं कर सकते। तब प्रजापति ने उन्हें मानव शरीर दिया। इसे देखकर इन्द्रियाधि^ष्ठा^त्री देवता बहुत प्रसन्न हुए और प्रसन्नता के मारे नाचने लगे।

'ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन् न वै नोऽयमल मितिता-
भ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्नवै नोऽयमलमिति ताभ्यः
पुरुषमानयत्ताअब्रुवन् सुकृतं बहेति पुरुषो वान सुकृतम्'

(ऐ. आ. २।४।२)

कि यह मानव शरीर सुकृत है अथवा प्रजापति की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसीलिए केन उपनिषद् का कहना है—

'इह चेद वेदी दथ सत्य मस्ति न चेदिहा वेदीन्महती विनष्टिः।'

(केन. २।५)

यदि इस मानव शरीर (जो क्षणभंगुर विनश्वर बुद्‌बुदोपम मूत्र पुरीष भण्डागार है) को पाकर इस अजर अमर अनन्त अखण्ड अछेद्य अभेद्य अदाह्य अक्लेद्य अशब्द अस्पर्श अरूप अव्यय प्रत्यक् चैतन्याभिन्नपरब्रह्म को जान लिया तो सत्य की प्राप्ति हो गयी और यदि नहीं जाना तो महान् विनाश है। फिर, कब मानव शरीर मिलेगा, कहा नहीं जा सकता। अकारण करुण करुणावरुणालय कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तु मसर्थ भगवान् (छूँछी भरे भरी ढरकावै। जब चाहे तब फेर भरावै।।)

भगवान् करुणा करके कभी ही मानव देह देते हैं। ("कबहुँक करि करुणा नरदेही। देत ईश बिनु हेतु सनेही।।") कारण यह है कि अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों को, एक-एक ब्रह्माण्ड के अनन्तानन्त प्राणियों को

एक-एक प्राणियों के अनन्तानन्त जन्मों को एक-एक जन्म के अनन्तानन्त कर्मों को एक-एक कर्म के अनन्तानन्तविचित्र फलों को जानने वाला तथा जानकर सबको कर्मानुसार फल देने वाला ही ईश्वर होता है। यह भी भगवान् की असीम कृपा है कि वे कर्मों का फल देते हैं। यदि कर्मों का फल देने वाला न हो तो अव्यवस्था फैल जाय। आज इतनी वेकारी की समस्या खड़ी है, क्यों ? इसलिए कि कोई कर्म फलदाता नहीं है। आज लाखों करोड़ों की संख्या में शिक्षक वेकार पड़े हैं। इञ्जिनीयर बेकार पड़े हैं। डाक्टर वेकार पड़े हैं। शासन सदा ही वेकारी दूर करने के लिए सचेष्ट है, किन्तु आए दिन वेकारी की समस्यायें मुँह बाए दिन दूनी रात चौगुनी वढ़ती जा रही हैं। यदि कोई हो तो शिक्षकों से इञ्जिनियरों से डाक्टरों से काम ले और उन्हें काम का फल दे तो फिर वेकारी समस्या तुरन्त समाप्त हो जाय। लोग कहते हैं कि हम अपने कर्म का फल भोगते हैं, इसमें ईश्वर की कैसी कृपा ? किन्तु, यह कहना ठीक नहीं। कारण, किसी ने अतिशय पुण्य कर्म किया, सत्य भाषण किया, सदाचार पालन किया, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अस्तेय का पालन किया, यज्ञ, तप, दान इत्यादि किया, किन्तु, वह कर्म तो क्रियमाण काल में विद्यमान रहा, क्रिया समाप्त होते ही समाप्त हो गया। फिर जब वह कर्म ही नहीं तो फल तो फल के साथ उसका सम्बन्ध कैसा ? 'ध्वकर्मप्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधन मृते।' विना भगवान् की आराधना के कर्म का फल कैसे मिलेगा ; क्योंकि कर्म तो करते ही नष्ट हो जाता है ? फिर भी वह विद्यमान ही नहीं रहता तो अपना फल कैसे अपने आप सम्पादन करेगा ? इसीलिए वेदों में श्रद्धा रखने वाले वैदिक लोग कर्म फल देने में भगवान् को जमानती समझ कर भक्ति भाव से वद्ध परिकर हो कर्म का सम्पादन करते हैं।

"क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां ध्वकर्मप्रध्वस्तं फलतिपुरुषाराधन मृते।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषुफलदानप्रतिभुवं श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा कृत परिकरः कर्मसुजनः ॥"

(महिमस्तोत्र २०)

श्रीमदुदयनाचार्य अपने न्याय कुसुमाञ्जलि के पहले स्तवक में नवमी कारिका में कहते हैं—

'चिरध्वस्तं फलायालं न कर्मातिशयं विना।'

(न्याय कु. १।९)

अर्थात् कर्म से एक अपूर्व फल उत्पन्न होता है और वह तवतक विद्यमान रहता है, जबतक कर्म का फल प्राणी भोग नहीं लेता। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी के अनन्तानन्त जन्मों के अनन्तानन्त कर्मों के अपूर्व जन्म पड़े हुए हैं। इनमें से कुछ ही जन्म कर्म अपूर्व फलोन्मुख होते हैं और ईश्वर की इच्छा के अनुसार ही फलोन्मुख कर्म का भोग करने के लिए विविध योनियाँ मिलती हैं। एक-एक कर्मों के इतने विलक्षण-विलक्षण अनन्तानन्त फल होते हैं कि सभी कर्मों का फल भोग प्राणी के द्वारा अनन्त काल में भी सम्भव नहीं है। क्योंकि नए-नए कर्म भी वनते जायेंगे। इस प्रकार सञ्चित कर्म कभी घटने का नाम ही नहीं लेगा। क्रियमाण अनवरत होता ही जायगा, फलोन्मुख कर्म या प्रारब्ध कर्म अपना फल भुगाने के लिए ईश्वर की कृपा से प्राणियों को नानाविध शरीर देंगे। महर्षि पतञ्जलि अपने योग शास्त्र में कहते हैं—

'सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः'

(पा. यो. सू. २।१३)

अर्थात् मूल रहने पर ही उसका परिपाक जाति (जन्म) आयु और भोग के रूप में पैदा होता है फिर सिवा भगवान् की कृपा के मानव देह प्राप्ति की आशा कैसे की जाय ? इसलिए पहले कह आये हैं कि यह क्षणभंगुर भी मानव देह प्राणियों के लिए अति दुर्लभ है। इसीलिए शास्त्र कहते हैं—

'नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ।।''

(श्री. मा. म पु. ११।२०।१७)

यह आद्य मनुष्यदेह प्रथम अर्थात् सभी फलों, सभी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थों का मूल है। इसी मानवदेह से ही प्राणी उच्च, उच्चतर, उच्चतम, हीन हीनतर, हीनतम सभी फलों को प्राप्त करता है।

ऐसे सर्वसमर्थ साधन को प्राप्त कर भी प्राणी यदि अपना साध्य न प्राप्त कर सका, तो वह आत्मघाती है।

बुद्धि का भी सदुपयोग इसी में है कि प्राणी उसके द्वारा उस अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न निखिल रसामृत मूर्ति आनन्द समुद्र सार सर्वस्व सर्वान्तरात्मा को प्राप्त कर ले। अखिल ब्रह्माण्ड में सबसे प्रधान बुद्धि ही है। मनुष्य अपनी सम्पूर्ण शक्ति हीनता स्वीकार कर सकता है, किन्तु, बुद्धि हीनता स्वीकार नहीं कर सकता। किसी को यह कहने से कि आपने चश्मा लगा रखा है ? क्या आँख से कुछ शिकायत है ? तो वह स्वीकार करता है कि हाँ, आँखों से कम दीखने लगा। दूर की दृष्टि क्षीण हो गई अथवा समीप की चीज नहीं सूझती। यदि कहा जाय कि क्या कान से कम सुनाई देता है ? आपको सुनने में दिक्कत है, जों कान के पास यन्त्र लगा रखा है। वह स्वीकार करता है कि श्रवण शक्ति क्षीण हो गई है। इसी तरह घ्राण की शक्ति (सूँघने) की कमजोरी भी प्राणी खुले हृदय से स्वीकार करता है। कर्मेन्द्रियों की भी क्षीणता स्वीकार करता है और इन सव कमजोरियों को स्वीकार करने में किसी को रञ्चमात्र भी हिचकिचाहट नहीं होती। किन्तु, बुद्धि की कमजोरी कोई भी स्वीकार नहीं करता। यदि किसी को कहा जाय कि क्या आप की बुद्धि कुछ कमजोर है अर्थात् आप मूर्ख हैं तो वह पलट कर यही उत्तर देगा कि तुम मुर्ख हो, जाहिल हो। अर्थात् सभी अपने आपको महा बुद्धिमान् समझते हैं और अपनी बुद्धि से सभी सुख का मार्ग निश्चित कर चलते हैं। इसीलिए गायत्री मन्त्र (जो वेद का सार सर्वस्व है) उस की भी महत्ता है कि उसमें बुद्धि की प्रार्थना की गई है।

केवल बुद्धि ही नहीं, सद्बुद्धि चाहिए। इसीलिए उपनिषदें कहती हैं कि—

'हिरण्यगर्भं जनयामासपूर्वं सन्तेबुद्धया शुभया संयुनक्तु ए'

(श्वे. उ. ३।४)

अर्थात् जिन परमात्मा ने पहले हिरण्यगर्भ अर्थात् समष्टि बुद्धि शरीर हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया वह हमें भी शुभबुद्धि दे, सद्बुद्धि दे। शुक्ल यजुर्वेदीयमाध्यन्दिनी संहिता भी यज्ञ से बुद्धि प्राप्ति की प्रार्थना के पश्चात् भी असन्तुष्ट रहती है और तब तक सन्तुष्ट नहीं होती, जब तक कि सुमति (सद्बुद्धि) प्राप्त नहीं कर लेती।

'मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पताम्

(वा. स. १८।११)

ऐसी बुद्धि को प्राप्त कर भी यदि उसे अर्थ प्राप्ति या काम सेवन में ही लगाया जाय तो बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती है। क्योंकि अर्थशास्त्र और कामशास्त्र में अर्थ और काम की शिक्षा पशु-पक्षियों से सीखने का उपदेश दिया गया है। इसलिए यदि बुद्धि प्राप्त कर भी उसका उपयोग अर्थ काम सेवन में किया, आत्म प्राप्ति में उसे नहीं लगाया तो यह बुद्धि का व्यय कार्पण्य दोषयुक्त माना गया है।

'एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम्॥'

(श्री. भा. म. पु. ११।२९।२२)

अर्थात् बुद्धिमानों की बुद्धि और चतुर लोगों की चतुराई तभी सफल समझना चाहिए, जबकि असत्य और मर्त्य इस मानव शरीर से वे परम सत्य अजर, अमर, अनन्त, अखण्ड परब्रह्म तत्त्व को प्राप्त कर ले। यह तो प्रसिद्ध ही है कि मानव शरीर भगवान् की परम कृपा से ही मिला है परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिए। किन्तु, बहुतेरे महाभागों ने पशु और पक्षी शरीर से भी भगवान् को प्राप्त किया है। महात्मा गोस्वामी श्री तुलसीदास ने विशेष रूप से उन लोगों की वन्दना की है। यथा

'अधम शरीर राम जिन्ह पाये' हनूमान्, जाम्बवान्, जटायु, भुशुण्डी आदि इनमे मुख्य हैं। गणिका अजामिल आदि ने जीवन पर्यन्त असदाचार में रहकर किन्हीं थोड़े ही सत्कर्मों से भगवान् को प्राप्त कर लिया। इनमें से कितने तो इस युग के भी नहीं, इस चतुर्युगी के भी नहीं, इस मन्वन्तर के भी नहीं, इस कल्प के भी नहीं किन्तु, उनका नाम अजर अमर चला आरहा है। श्री विभीषण शरणागति के प्रसङ्ग में भगवान् श्रीराम ने भक्तराज कपोत (कबूतर) दम्पती का स्मरण किया है और महर्षि बाल्मिकी ने उस कपोत का इस प्रकार वर्णन किया है—

'श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः।
पूजितश्च यथा न्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः॥

(यु. का. १८।२४)

इस श्लोक से संस्मरण कर अपनी स्वर्णिम लेखनी को और भी ओजस्विनी कर दिया। पुराणगण तो इस कपोत दम्पती का गुणवर्णन करते नहीं अघाते। राजनीति के अति प्रतिष्ठित ग्रन्थ पंचतन्त्र में काकोलूकीय (काक और उलूक के अमित विरोध जैसे) प्रकरण में इस कथा को विस्तार से लिखकर ऐसा अन्तर कर दिया कि साधारण किस्से कहानी जानने वाले लोग भी उस दम्पती को जान लें और उसके प्रति कृतज्ञता से उसके नाम पर शिर झुकायें।

मनुष्यों में तीन श्रेणी के लोग होते हैं। (१) उत्तम (२) मध्यम और (३) अधम। यद्यपि अर्थ (पैसा) काम और धर्म दोनों का ही साधन हैं तथापि अधम श्रेणी के लोग धर्म की परवाह नहीं करते और काम (भोग) साधन होने के कारण अर्थ को ही प्रधानता देते हैं। ऐसे लोगों का ध्येय परमाराध्य अर्थ (पैसा) ही होता है। वे लोग अर्थ के लिए अपने प्राणों तक को न्योछावर कर देते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग अर्थ को अपरिहार्य अवश्योपार्जनीय मानते हुए भी उसके साथ-साथ अपनी इज्जत, प्रतिष्ठा मान मर्यादा, कीर्ति का ध्यान रखते हैं। उसे गँवाना कभी भी स्वीकार नहीं करते, किन्तु; उत्तम श्रेणी के लोग अर्थ की परवाह नहीं करते। उनकी धारणा होती है कि प्रारब्धानुसार जैसे देह प्राप्त होता है, वैसे भोग प्राप्त होता है।

उसी प्रकार प्रारब्धानुसार ही अर्थ भी प्राप्त होता है। उसके लिए जीवन क्या खपाना। वे उत्तम लोग प्रतिष्ठा के लिए, कीर्ति के लिए जीवन न्यौछावर कर देते हैं। इसीलिए अभियुक्तोक्ति है—

'अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानंच मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानंहिमहतां धनम्॥

ऐसे ही उत्तम श्रेणी के लोगों की सजीव कीर्ति विश्व में व्याप्त रहती है। जैसे भगवान् श्रीराम ने कपोत दम्पती का स्मरण किया है वैसे ही जगदम्वा जगज्जननी जानकी ने श्री हनुमानजी के मुख से राक्षसियों को दण्ड देने की वात सुनकर एक ऋक्षराज का स्मरण किया है। श्री जगदम्वा जगज्जननी श्री जानकी ने वताया कि एक जङ्गल में उस जङ्गल का परम क्रोधी राजा एक सिंह रहता था, तथा एक ऋक्ष भी उसी जङ्गल में रहता था। ऋक्ष और मृगेन्द्र की प्रति द्वन्द्विता रहती थी। फिर भी ऋक्ष चतुराई करके किसी न किसी प्रकार आत्म रक्षा कर लेता था और मृगेन्द्र के वश में नहीं आता था। दैवयोग से एक मनुष्य उस जङ्गल में पहुँच गया और रात्रि विश्राम के लिए हिंसक जन्तुओं के डर से उसने एक घने वृक्ष का सहारा लिया और उस पर चढ़ गया और अधिक ऊपर चढ़ने पर उसे लम्वी-लम्वी श्वास लेता हुआ भालू दीखा। वह भय के मारे घवड़ाकर ऐसा हो गया कि काटो तो खून नहीं। भालू ने देखा कि वह मनुष्य डर गया तो भालू ने मानव वाणी में मनुष्य को आश्चर्यान्वित करते हुए कहा कि तुम ऊपर आजाओ हमारे अतिथि हो। हमें आतिथेयी क्रिया का ज्ञान हैं। किन्तु, वह ऊपर नहीं गया। भालू ने अपने हाथ से पकड़कर उसे अपनी ओर ऊपर खींच लिया और अपना पैर फैला कर दूसरी डाल में सटाकर उस मनुष्य को अपनी गोद में सुला लिया। उसी समय सिंह आगया और उसने भालू से कहा कि देख भालू! हमारी तुम्हारी वारह वर्षों से शत्रुता चल रही है, वह शत्रुता तुम्हारे ही काम से मिट सकती है।

फिर तुम भी मेरे समान स्वतन्त्र इस जंगल में विचरण करना। तुम समझ लो, यह मानव जाति बड़ी ही धूर्त एवं धोखेवाज होती है, यह सबके साथ धोखा करती है। यह मनुष्य तुम्हारे (जो तुम उसके साथ इतना उपकार कर रहे हो) साथ भी धोखा करेगा, इसलिए तुम इसे नीचे गिरा दो, हम इसे मारकर खाजायेंगे। हमारा और तुम्हारा दोनों का ही शत्रु समाप्त हो जायगा। इसलिए तुम इसे झटपट नीचे गिरा दो। हम इसे भक्षण करलें। तुम भी हमारे मित्र वनकर इस जंगल में स्वतन्त्रतापूर्वक भ्रमण करो। भालू ने उत्तर दिया कि तुम भले ही वारह वर्ष के वजाय चौवीस वर्ष से शत्रुता रखो, पर यह हमारा अति प्रिय अतिथि है, मैं किसी भी प्रकार इसे नहीं गिरा सकता। भालू की वात सुनकर सिंह हताश होकर चला गया। भालू के देह की कोमल शय्या के कारण उस थके हुए राजकुमार को वहुत ही जल्दी निद्रा आगयी। आधी रात के समय जब नींद खुली तो उसने भालू से कहा कि अव आप मेरी गोद में सोजायँ भालू ने जवाव दिया कि हम लोग वरावर ही वृक्ष की शाखाओं पर सोते हैं अतः हम लोगों को अभ्यास रहता है। हम शाखा पर ही सोयेंगे। किन्तु, फिर भी वहुत आग्रह करके उस मनुष्य ने भालू का शिर अपनी गोद में रखा। जव भालू प्रगाढ़ निद्रा में सो गया तो अवसर देखकर सिंह आया और मनुष्य से कहा कि तुम कितने दिन यहाँ इस तरह रहोगे। जंगल तो कभी न कभी तुम्हें पार करना ही पड़ेगा और मैं मार्ग में ही तुम्हें मार डालूँगा। यह तुमने सुन ही रखा है कि हमारी और भालू की परस्पर शत्रुता है। भालू का ही क्या विश्वास कि वह तुम्हें न मारे, क्योंकि वह नख वाला है। राजनीति शास्त्र में कहा है कि—

'नदीनां शस्त्रपाणीनां नखीनां शृंगिणान्तथा।
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषुराजकुलेषुच ॥''

अर्थात् नदियों, शस्त्र हाथ में रखने वाले नख और शृङ्ग वाले जानवरों तथा स्त्रियों का विश्वास नहीं करना चाहिए एवं राजकुलीन पुरुषों का भी विश्वास नहीं करना चाहिए। यह भालू किसी समय भी तुम पर प्रहार कर सकता है। तुम इसे नीचे गिरा दो। मैं इसे मार डालूंगा। मेरा वारह वर्ष का एक शत्रु समाप्त हो जायगा। तुम फिर वेखटके इस जंगल से अपने घर जा सकोगे।

मनुष्य की वुद्धि में जंगल के राजा सिंह की वात घर कर गयी। उसने सोचा कि अव भालू को गिरा देना ही ठीक होगा। उसने सोये हुए भालू को गिराने के लिए जोर का धक्का दिया। भालू एक वार गिरा तो सही किन्तु अभ्यास के कारण कोई शाखा उसके हाथ आ गयी तथा वीच से ही वह ऊपर चढ़ गया। तव सिंह ने भालू से कहा कि देखो भालू; मैंने पहले ही कहा था कि यह मनुष्य नामक जन्तु वहुत धोखेवाज होता है और यह तुम्हारे साथ भी धोखा करेगा। परिणामस्वरूप इसने धोखा किया है। अव तुम इसे इसके अपराध के दण्ड स्वरूप नीचे गिरादो। हमारी तुम्हारी वारह वर्ष की शत्रुता है, वह समाप्त हो जायगी और मेरे समान ही स्वतन्त्र रूप से जंगल में विचरण करना। भालू ने कहा कि तुम्हारी कूटनीति मानव के ऊपर ही सफल हो सकती है, क्योंकि, वह सरल हृदय का होता है। हम तुम्हारी सारी चालवाजी समझते हैं। हमारे ऊपर तुम्हारी कूटनीति सफल न होगी। हमारा अपराध इस मनुष्य ने किया है, हम इसे स्वयं दण्ड दे लेंगे। यदि कोई अपराध करता है, तो उसका फल स्वयं ही उसे भोगना पड़ता है। इसलिए सवको अपनी मर्यादा में रहते हुए अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए। अपराध करने

वाले के प्रति भी अपराध नहीं करना चाहिए। सच्चरित्रता वरतनी चाहिए। क्योंकि सज्जन पुरुषों की सच्चरित्रता ही भूषण है।

'न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणः ।।४३।।

अपराधी अथवा निरपराध के साथ, अपने साथ अच्छा व्यवहार करने वालों या ऐसे महान् अनर्थ करने वालों (जिनका वध ही कर देना उचित है) उनके साथ भी सज्जन पुरुष को सहृदयता सहानुभूतिपूर्ण ही व्यवहार करना चाहिए। अपराध किससे नहीं बन जाता?

'पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ।।४४।।'

लोक हित में ही दिलचस्पी रखने वाले निरन्तर क्रूरतापूर्ण अपराध करने वाले लोगों का भी अप्रिय नहीं करना चाहिए।

'लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।
कुर्वतामपि पापानि नैवकार्यमशोभनम् ।।'

(वा. रा. यु. का. ११३।४३-४५)

क्रूरतापूर्वक लोक दमन करने में हो जिन्हें आनन्द आता है, उन दुष्टों का भी निरन्तर अप्रिय करते रहने पर भी अप्रिय नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार क्षमा मूर्ति क्षमा परायणा कल्याणमयी करुणामयी पुत्रवत्सला जननी पराम्बा श्रीसीताजी द्वारा उस परम सज्जन भालू का स्मरण किया गया है। अरबों वर्षों से अजर अमर भालू का नाम है। उसने अपनी मान मर्यादा की रक्षा करते हुए इतना सौजन्य दिखाया था। इसीलिए कहा है— 'मानं हि महतां धनम्' उत्तम पुरुषों का धन मान ही है।

इसीलिए राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है—

'उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती। उसी उदार से धरा कृतार्थभाव मानती।।
उसी उदार की कथा सजीव कीर्ति कूजती। तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती।।
अखण्ड आत्मभाव जो असीम विश्व में भरे। वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।।
क्षुधार्त रन्तिदेव ने दिया करस्थ थाल भी। तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थि जाल भी।।
उशीनर क्षितीश ने स्वमांस दान भी किया। सहर्ष कर्णवीर ने शरीर चर्म भी दिया।।
अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या डरे। वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।।

असीम विश्व में आत्मभाव रखने वाले और उस भावना के अनुसार कार्य करनेवाले पुरुष ही

महान् होते हैं। उन्हीं का पावन यश जन्म जन्मान्तरों युग युगान्तरों कल्प कल्पान्तरों तक जनता सदा बखानती है और उन्हीं के आदर्श पर चलकर अपना लोक-परलोक सुधारती है। महर्षि कृष्णद्वैपायन श्री वेद व्यास ने धर्म का स्तर भी बतलाया है।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

अर्थात् हम धर्म का सार-सर्वस्व आप लोगों को सुना रहे हैं। आप सभी लोग सावधान होकर सुनें, तथा सुनकर उस पर विचार कर निर्णय करें। धर्म का सार यही है कि जो अपने को प्रतिकूल हो, अच्छा न लगता हो, दूसरों के साथ भी हमें वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जो उसे खराब न लगे। यदि हमारे साथ कोई धोखा करता है, यदि कोई झूठ बोलता है तो हमें खराब लगता है। अतः हमें भी दूसरों को धोखा नहीं देना चाहिए। व्यवहार में दूसरों के साथ झूठ नहीं बोलना चाहिए। यदि हमारे यहाँ कोई चोरी करता है तो हमें खराब लगता है। अतः हमें भी किसी दूसरे के यहाँ चोरी नहीं करनी चाहिए। हमें कोई गाली देता है या चिढ़ाता है तो हमें खराब लगता है। अतः हमें भी दूसरों को गाली नहीं देना चाहिए न चिढ़ाना चाहिए। भगवान् मनु कहते हैं कि—

सत्यंब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्। प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मःसनातनः।म४।१३८

सत्य ही बोलना चाहिए (मिथ्या नहीं) और सत्य भी वही बोलना चाहिए जो कि प्रिय हो। अप्रिय न हो, कटु न हो।

यदि किसी अन्धे को अन्धा कहकर बुलाया जाय तो उसे खराब लगेगा। इसलिए वैसा नहीं करना चाहिए। अपने आप को कोई चीज खराब होती है तो कितना दुःख लगता है, उसी प्रकार दूसरों को भी दुःख होता होगा। जैसी हमारी आत्मा, वैसी ही दूसरों की भी समझना चाहिए इसलिए किसी को भी सताना नहीं चाहिए। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रिय बोलने के मामले में कहीं हम ऐसा प्रिय न बोल बैठें कि वह मिथ्या निकल जाय। कुछ लोग समझते हैं कि प्रिय बोलने से सभी लोग सन्तुष्ट होते हैं, प्रसन्न होते हैं। प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः। तस्मात्प्रियं प्रवक्तव्यं वचने का दरिद्रता।।' अतः जिस किसी प्रकार सत्य मिथ्या कैसा भी प्रिय बोलकर सबको सन्तुष्ट करना चाहिए। जब प्रिय ही बोलना है तो उसमें कंजूसी क्यों किया जाय? कैसा भी प्रिय बोलकर सबको सन्तुष्ट किया जाय, किन्तु ऐसा सोचना ठीक नहीं, क्योंकि भगवान मनु की आज्ञा है कि—

प्रियं च नानृतंब्रूयादेष धर्मः सनातनः।

प्रिय भी झूठ नहीं बोलना चाहिए, किसी से विवाद नहीं करना चाहिए। यही सनातन धर्म है। यह नियम पालन करने से विवाद नहीं उठेगा, जो सबकी बातों को सह लेता है, बरदाश्त कर लेता है, वह सर्वान्तरात्मा को सन्तुष्ट करता है। सर्वात्मा को सन्तुष्ट करने वालों के लिए न तो गङ्गा स्नान की आवश्यकता है न कुरुक्षेत्र गमन की। उसे सर्वात्मा के सन्तोष के कारण सब कुछ प्राप्त हो जाता है। भगवान् मनु कहते हैं—

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदिस्थितः ।
तेनचेदविवादस्ते मागङ्गां मा कुरून् गमः ॥म.८।२' ।

जो तुम्हारे हृदय में भगवान् अन्तर्यामी परमात्मा विद्यमान हैं, यदि तुम्हारा उनके साथ कोई विवाद नहीं है तो तुम्हें पाप निर्मोचन के लिए न गङ्गा स्नान को आवश्यकता है, न तो कुरुक्षेत्र गमन को । सर्वात्मा के सन्तोष के कारण वह स्वयं ही कृतकृत्य हैं निष्पाप हैं ।

आपसी व्यवहार में भी विवाद खड़ा होने पर उसे सहन कर लेना विवाद का अवसर आने ही नहीं देना, बहुत उत्तम बात है । ऐसा करने से लोकप्रियता बढ़ती है । भगवान् श्री मनु कहते हैं—

ऋत्विक् पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैः ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥१७९॥
मातापितृभ्यां जामिनिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ।
दुहित्रादासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥१८०॥

(मनुस्मृति अ० ४)

अर्थात् ऋत्विक पुरोहित, गुरु, मामा, अतिथि, अपने अधीन रहने वाले बालक, बृद्ध, रोगी वैद्य, पितृ पक्ष के वन्धु, जामाता, श्यालक अर्थात् साले, मातृ पक्ष के वन्धु, माता पिता, भगिनो, पुत्रवधू, भ्राता पुत्र भार्या, दुहिता और नौकरों से विवाद नहीं करना चाहिए । इनके साथ विवाद उपस्थित होने पर यदि प्राणी सहन कर जाता है और विवाद उठने नहीं पाता, तो वह अज्ञात सभी पापों से बच जाता है और विवाद की उपेक्षा करने के कारण वह इन सभी लोकों को जोत लेता है, जिन्हें आगे बतलाया जा रहा है ।

'एतैर्विवादं सन्त्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
एभिर्जितैश्च जयति सर्वाल्लोकानिमान् गृही ॥१८१॥

अर्थात् आचार्य, ब्रह्मलोक के, पिता, प्राजापत्य लोक के, अतिथि, इन्द्र लोक के और ऋत्विक देवलोक के स्वामो होते हैं । भगिनी, पुत्रवधू आदि, अप्सराओं के लोक की स्वामिनी होती हैं । वान्धव, वैश्वदेव लोक के, जामाता श्यालक अर्थात् साले आदि सम्वन्धी, वरुण लोक के, माता-मामा आदि भूलोक के स्वामी होते हैं । बालक-वृद्ध-दुर्बल और रोगी आकाश के स्वामी होते हैं । बड़ा भाई पिता के समान होता है, पत्नी तथा पुत्र अपना शरीर ही हैं । नौकर आदि अपनी छाया हैं । पुत्री अत्यन्त कृपा पात्र है । अतः ये लोग कटुवाणी से कुछ आक्षेप भी करें, तो उसका उत्तर न देते हुए सब कुछ सहना चाहिए ।

यथा—

'आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः ।
अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः ॥१८२॥
जामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः ।
सम्बन्धिनो ह्यपांलोके पृथिव्यां मातृमातुलौ ॥१८३॥
आकाशे शास्तुविज्ञेया बाल वृद्ध कृशातुराः ।
भ्राता ज्येष्ठ समःपित्रा भार्यापुत्रः स्वकातनुः ॥१८४॥
छाया स्वदासवर्गश्च दुहिताकृपणं परम् ।
तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेतासं ज्वरम् सदा ॥१८५॥

(मनुस्मृति अध्याय ४)

तात्पर्य यह है कि किसी भी प्रकार के भले बुरे साधन से साध्य की प्राप्ति अच्छी नहीं कही गयी है, किन्तु; अच्छे साध्य की सिद्धि के लिए अच्छा ही साधन होना चाहिए । इसीलिए परम धर्मात्मा, परम ज्ञानी भगवद्भक्त शिरोमणि श्री विदुरजी कहते हैं कि--

'मिथ्योपेतानिकर्माणि सिद्धयेयुर्यानिभारत ।
अनुपायप्रयुक्तानि मास्म तेषु मनः कृथाः ॥

(म. भा. उ. प. ३४।६)

अर्थात्–छल, धोखा, झूठ के प्रयोग से जो काम वनते हों और उचित उपाय न करने पर भी दवाव आदि से जो काम वने, उसकी ओर मन भी नहीं करना चाहिए । यह सव ज्ञान मानव शरीर के अतिरिक्त अन्य किसी भी शरीर से नहीं हो सकता । अतएव मानव शरीर का इतना गुणगान शास्त्रों ने किया है । साथ ही प्राणियों के अनन्त जन्म हैं । एक एक जन्म के अनन्तानन्त कर्म हैं । भगवान् की कृपा से उन सञ्चित अनन्तानन्त कर्मों में से कुछ कर्म फलोन्मुख होते हैं तथा उनका फल भोगने के लिए शरीर प्राप्त होता है । भगवान् अकारणकरुण करुणावरुणालय हैं । वे कृपा करके भगवत्प्राप्ति के लिए जनन मरणाविच्छेद रूप संसार से छुटकारा पाने के लिए कभी मानव शरीर दे देते हैं । श्री गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं कि—'कवहुँक करि करुणा नरदेही । देत ईश विनु हेतु सनेही ॥' अर्थात् अकारण करुण करुणावरुणालय भगवान कभी कृपा करके मानव शरीर दे देते हैं । इसी से ऐसा समझना चाहिए कि यह शरीर जन्म जन्मान्तर युग युगान्तर कल्प कल्पान्तर के पुण्य पुञ्ज एकत्रित होने पर ही भगवान की कृपा से मिलता है । अपने पुरुषार्थ से कोई इसे प्राप्त नहीं कर सकता । इसका समर्थन सभी वेदों शास्त्रों से होता है । महात्मा गण बड़े समारोह से इसका प्रतिपादन करते हैं ।

सनातन धर्म का यह डिण्डिम घोष है कि मनुष्य शरीर अति दुर्लभ है । श्रुतियाँ भी कह रही हैं—

(१५)

'तद् य इह रमणीया चरणाअभ्याशोह यत्ते रमणीयां योनिमापघेरन् ब्राह्मण योनिं वा, क्षत्रिय योनिं वा, वैश्य योनिंवाथ य इह कपूया चरणा अभ्याशोह यत्ते कपूयां योनिमा पघेरन् श्वयोनिम्वा सूकरयोनिम्वा, चाण्डाल योनिम्वा ।'

(छा. उ. ४।१०।७)

अर्थात् जो जितना ही शास्त्र सम्मत छल छद्म से वर्जित दम्भ से वर्जित क्रूरता से वर्जित अनंत पाखण्ड से वर्जित कर्म करता है, वह शीघ्र ही उसका फल भोगने के लिए ब्राह्मण शरीर, क्षत्रिय शरीर, वैश्य शरीर को प्राप्त करता है । जो शास्त्र विहित, शास्त्रानुमोदित, शास्त्र समर्थित कर्म का आचरण नहीं करते, निंदित आचरण करते हैं, वे वैसे ही कपूय योनि अर्थात् कुत्ते की योनि, शूकर की योनि चाण्डाल की योनि को प्राप्त करते हैं । रामायण में भी इसका प्रतिपादन किया है । वहाँ प्रश्न रूप से कहा गया है—

प्रथमहिं कहहु नाथ मति धीरा । सब ते दुर्लभ कवन शरीरा ।।'

और उत्तर दिया गया है—

'नर समान नहिं कवनेऊँ देही । जीव चराचर जाचत जेही ।।'
बड़े भाग मानुषतनु पावा । सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन्हि गावा ।।'

अर्थात् यह मानव शरीर शूकर कूकर कीट पतङ्ग आदि जीवों को ही नहीं, किन्तु देवता-दानव आदिकों के लिए भी परम दुर्लभ हैं । पहले तो मानव शरीर प्राप्त हो, वह भी भगवती भागीरथी यमुना सरयू शतद्रु विपाशा सिन्धु गण्डकी कृष्णा कावेरी गोदावरी आदि परम पुण्य सलिला नदियों के जल से सिक्त परम पुण्य मय इस भारत भूमि में प्राप्त हो, यह परम सौभाग्य का विषय है । इसीलिए परम महान् देवगण इसकी महिमा का गुणगान वर्णन करते नहीं अघाते । जैसा कि पुराणों में कहा हुआ हैं—

'तदेतद् भारतं वर्षं सर्वबीजं द्विजोत्तमाः ।।६६।।
ब्रह्मत्वं ममरेशत्वं देवत्वं मरुतां तथा ।
मृगपक्षाप्सरो योनिस्तद्वत्सर्पसरीसृपाः ।।६७।।
स्थावराणां च सर्वेषामितो विप्राः शुभाशुभैः ।
प्रयान्ति कर्मभि विप्रानान्या लोकेषु विद्यते ।।६८।।
देवानामपि भो विप्राः सदैवैष मनोरथः ।
अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रच्युताः क्षितौ ।।६९।।

मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः ।
तत्कर्म निग्रहग्रस्तैस्तत्कर्म क्षयणोन्मुखैः ॥७०॥
न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भोद्विजाः ।
यत्र विप्रादयो वर्णाः प्राप्तुवन्त्यभिवाञ्छितम् ॥७१॥
धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते येनरोत्तमाः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥७२॥
प्राप्यते यत्र तपसः फलं परम दुर्लभम् ।
सर्वं दानफलञ्चैव सर्वयज्ञफलं द्विजाः ॥७३॥
तीर्थ यात्रा फलं चैव गुरु सेवा फलं तथा ।
यत्रदेवाः सदा हृष्टा जन्मवाञ्छति शोभनम् ।
नानाव्रत फलं चैव नानाशास्त्र फलं तथा ॥७५॥
अहिंसादि फलं सम्यक् फलं सर्वाभिवाञ्छितम् ।
ब्रह्मचर्यं फलञ्चैवगार्हस्थ्येन च यत्फलम् ॥७६॥
यत्फलं वनवासेन सन्यासेन च यत्फलम् ।
इष्टं पूर्वं फलं चैव तथान्यशुभ कर्मणाम् ॥७७॥
प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमाः ।
देवताराधन फलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः ॥७४॥
कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्या खिलान् द्विजाः ॥७८॥
एवं सम्यक् मया प्रोक्तं भारतवर्षमुत्तमम् ।
सर्वं पापहरं पुण्यं धनबुद्धि विवर्धनम् ॥७९॥

(ब्रह्मपुराण अध्याय २७)

अर्थात् सर्व लोक पितामह भगवान् ब्रह्माजी ब्राह्मणों से कह रहे हैं कि यह भारत भूमि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति का मूल कारण हैं ॥६६॥ यहाँ मनुष्य शरीर धारण करके जीव अपने पुण्य कर्मों के द्वारा ब्रह्मपद, इन्द्रपद, देवपद और मरुतों (देवगण विशेष) का पद तथा पाप कर्मों के द्वारा मृग योनि, यक्ष, राक्षस पिशाचादि योनि और सर्पादि रेंगनेवाले जीवों की योनि तथा वृक्षादि स्थावर योनि को प्राप्त कर सकता है। अखिल विश्व में इस भारत भूमि को छोड़कर और कोई भी भूमि कर्म भूमि नहीं है ॥६७-६८॥ देवताओं के मन में यह लालसा सदा बनी रहती है कि क्या हमारा भी ऐसा सौभाग्य होगा कि देव पद छूटने के बाद भूलोक में भारतवर्ष में हमें मानव शरीर प्राप्त हो ॥६९॥ क्योंकि देवता दानवादि यक्ष राक्षस पिशाचादि सभी ऐसे दृढ़ कर्म बन्धन की हथकड़ी-बेड़ी से बँधे हुए हैं कि वे

अर्थात् कर्मबन्धन का क्षय कर्मक्षय करना चाहें तो भी नहीं कर सकते। हाँ, भारत भूमि में उत्पन्न होने वाला मनुष्य कर्मक्षय कर सकता है ॥७०॥ हे विप्रगण! भारतवर्ष के समान अखिल विश्व में कोई भी देश नहीं हैं, क्योंकि यहाँ जन्म प्राप्त कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्ण, कर्म करके अपना मनोवाञ्छित पद प्राप्त कर सकते हैं ॥७१॥ भारतवर्ष में जिन्हें जन्म मिल गया, वे धन्य हैं। क्योंकि यहाँ जन्म प्राप्त कर विविध कर्म और उपासनाओं के द्वारा वे सभी धर्म अर्थ काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थों एवं सबका परम फल अस्पर्श अरूप अव्यय निर्गुण निराकार निर्विकार अदृश्य अग्राह्य अलक्ष्य अव्यप देश्य सच्चिदानन्द भगवत्पद और सगुण साकार सच्चिदानन्द भगवत्प्राप्ति रूप परम फल प्राप्त कर सकते हैं ॥७२॥ अन्य भूमि में जो तप, दान, यज्ञ, तीर्थयात्रा, गुरुसेवा, देवाराधन, स्वाध्याय आदि पुण्यकर्म किये जाते हैं उन पुण्य कर्मों का फल प्राप्त नहीं होता है। अन्याय, अत्याचार, दुराचार दुर्विचार आदि कुत्सित कर्मों का फल, जिसे एक शब्द में कहें तो पतन ही कहा जा सकता है। जो सर्वत्र ही प्राप्त हो सकता है। किन्तु; उत्थान रूप फल अन्यत्र नहीं प्राप्त हो सकता है ॥७३।७४॥ यही भारत भूमि ऐसी है कि यहाँ मानव जन्म पाने के लिए देवतागण भी तरसते हैं। क्योंकि यहाँ भारतवर्ष में ही अनेक प्रकार के व्रतों का फल, अनेक प्रकार के समीचीन शास्त्रों के अध्ययन का फल, अहिंसा आदि सुन्दर नियमों का फल, ब्रह्मचर्य का फल, गार्हस्थ्य का फल, (अर्थात् गृहस्थाश्रम में किये जाने वाले परम पवित्र कर्मों का फल) वानप्रस्थ आश्रम द्वारा सम्पादन होने वाले नानाविध कर्मों का फल, संन्यास आश्रम द्वारा सम्पन्न किये जानेवाले कर्मों का फल, इष्ट (अर्थात् अग्निहोत्र, वलि वैश्य देवादि पञ्चयज्ञों एवं पूर्त (अर्थात् अन्नदान, वृक्षादिरोपण, मन्दिरादि का निर्माण, कूप सरोवर आदि का निर्माण आदि) का फल इसी प्रकार से अन्य शुभ कर्मों का फल भी प्राप्त होता है, अन्यत्र भूमि में नहीं। इस परम पवित्र भारत भूमि का सम्पूर्ण गुण कौन वर्णन कर सकता है? ॥७५, ७६, ७७, ७८॥ इस प्रकार हमने सभी पापों को दूर करने के लिए स्वभावतः परम पवित्र बुद्धि वर्धक धनवर्धक, उत्तम भारत भूमि का हमने भली प्रकार वर्णन कर दिया है ॥६॥ इसी प्रकार विष्णु पुराण का कहना है कि—

अत्र जन्म सहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम।
कदाचिल्लभतेजन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् ॥२३॥
गायन्ति देवाः किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्तिभूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥२४॥
कर्माण्यसङ्कल्पित तत्फलानि संन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते।
अवाप्यतां कर्ममहीमनन्ते तस्मिल्लयं ते त्वमला प्रयान्ति ॥२५॥

(विष्णु पुराण अंश २ अध्याय ३)

अर्थात्—महर्षि पराशर मैत्रेय महर्षि से कह रहे हैं कि हजारों लाखों करोड़ों योनियों में भटकते हुए प्राणियों का जब पुण्य सञ्चय (पुण्य का खजाना) कुछ बचा रहता है तब उसे सौभाग्य से भारत भूमि में मनुष्य शरीर प्राप्त होता है। क्योंकि, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) तथा भगवत्पद प्राप्ति के लिए

यह भारत भूमि ही कर्मभूमि है। 'कर्मभूमिरिवस्वर्गंमपवर्गंच गच्छताम्' (वि. पु. २।३।२) देवगण मुक्त कंठ से भारतवर्ष की महिमा का गुणगान किया करते हैं। वे कहते हैं कि स्वर्ग और अपवर्ग तथा भगवत्पद की प्राप्ति रूप फल का मार्ग एक मात्र भारतभूमि ही है। कारण यह है कि हम लोगों का जितना उत्थान (उन्नति) होना था, वह हो चुका। अब हम पतन के किनारे हैं, पता नहीं, कहाँ जांय? यहाँ जिन्हें जन्म प्राप्त हो गया, वे देवताओं की अपेक्षाभी अधिक सुकृती हैं, पुण्यात्मा हैं। किन्तु; भारतवर्ष में उत्पन्न पुरुष जैसा चाहे वैसा उत्तम कर्म करके जा सकते हैं ।।२३।। भारतवर्ष में जन्म लेने वाले पुरुष दृष्ट अदृष्ट विविधफलों की कामना का संकल्प न करके इस पुण्यभूमि में पुण्य कर्मों का अनुष्ठान कर उन कर्मों को भगवच्चरणारविन्द में समर्पण कर अन्त में परमप्रिय भगवत्पद प्राप्त कर लेते हैं ।।२४।। तथा भारतवर्ष में जन्म ग्रहण के पुण्य फल की कामना से रहित होकर कर्म करते हैं और कर्म करने के अनन्तर उन पावन कर्मों को सबके परम अन्तरङ्ग सर्वात्मा विष्णु में समर्पित करके निर्मल होकर अन्त में उन्हीं भगवान् अनन्त में विलीन हो जाते हैं।

अर्थात् पुनरावृत्ति जहाँ से नहीं होती, भगवान् के उन परमपद को वे प्राप्त कर लेते हैं। अत: वे पुरुष हम लोगों की अपेक्षा भी अधिक धन्य है ।।२५।।

श्रीमद्भागवत महापुराण में भी कहा गया है—"

"एतदेव हि देवा गायन्ति—

'अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषांस्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ।।२१।।
किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दान्तादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना।
न यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ।।२२।।
कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ।।२३।।

(श्रीमद्भागवत महापुराण स्कन्ध ५ अध्याय १९)

भारतवर्ष में उत्पन्न मनुष्यों की महिमा का गुणगान देवता भी इस प्रकार करते हैं। उन लोगों ने कौन-सा कितने दिन ऐसा पुण्य किया कि उन लोगों को भगवान् की सेवा के योग्य भारतवर्ष में मनुष्य जन्म मिल गया। अथवा भगवान् श्रीहरि इनपर अपनी अहैतुकी कृपा से स्वयं ही प्रसन्न हो गये हैं। ऐसे परम सौभाग्य के लिए हम लोग भी निरन्तर तरसते रहते हैं ।।२१।। अत्यन्त दुष्कर यज्ञ तप व्रत दान आदि कर्मों द्वारा हम लोगों ने यह स्वर्ग का स्थान प्राप्त किया है, किन्तु यह अत्यन्त तुच्छ है।

कारण, यहाँ हम लोगों को इन्द्रियों के भोगों की इतनी अधिकता प्राप्त है कि भगवान् नारायण के पादपंकज का स्मरण ही नहीं होता ।।२२।। यह स्वर्ग तो अति तुच्छ है। यहाँ की तो बात हो क्या?

किन्तु, जहाँ ब्रह्मलोकादि में कल्पपर्यन्त आयु की प्राप्ति होती है, और उसके वाद पुनः संसार में लौटना पड़ता है, उसकी अपेक्षा भी भारतवर्ष में थोड़ी आयुवाला भी जन्म अच्छा ही है। क्योंकि धीर पुरुष अपने इस मर्त्य शरीर से किए हुए सम्पूर्ण कर्मों को श्री भगवच्चरणारविन्द में समर्पण करके अभयपद एक क्षण में ही प्राप्त कर लेता है ॥२३॥ इस विवेचन से 'दुर्लभो मानुषोदेहो वाली वात ठीक ही है। वैसे तो भारत ही क्या, अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की (उत्पत्ति, स्थिति और संहार उसी अशरण शरण अकारणकरुण करुणावरुणालय भगवान् से ही होता है, उन्हीं भगवान् का स्वरूप हैं। इसीलिए वेद कहते हैं कि (तज्जलान इति शान्त उपासीते) छा० ३।१४।१ यह अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड तज्ज है (अर्थात् अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् से उत्पन्न होता है और तल्ल है अर्थात् अन्त में उन्हीं में विलीन होता है तथा तदन है अर्थात् उन्हीं में स्थित होकर पालित पोषित होकर श्वास लेता है अर्थात् जीवन धारण करता है, शान्त चित्त होकर यह उपासना करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि जल से उत्पन्न होने वाला और जल में ही स्थित होने वाला तथा अन्त में जल में ही विलीन होने वाला फेन बुद्बुद तरङ्गादि जल से अतिरिक्त नहीं होता, किन्तु; जल स्वरूप ही है। सुवर्ण से उत्पन्न कटक मुकुट कुण्डलादि सुवर्ण में ही स्थित होता है, सुवर्ण में ही विलीन होता है, वह भी सुवर्ण से अतिरिक्त नहीं होता, किन्तु सुवर्ण स्वरूप ही होता है। इसी तरह पृथिवी से उत्पन्न होकर पृथ्वी में ही स्थित होकर पृथिवी में ही विलीन होने वाला घट, शराव उदञ्चनादि पृथिवी से अतिरिक्त नहीं होता, किन्तु पृथिवी स्वरूप ही होता है उसी प्रकार अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक परात्पर पूर्णतम पुरुषोतम परब्रह्म से अतिरिक्त न होकर तत्स्वरूप ही है। इसीलिए श्रुतियाँ कहती हैं कि— 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' (छा० ३।१४।१) श्री गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रामचरित मानस में भी कहते हैं--'सियाराम मय सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि युग पानी ॥' इस प्रकार अखिल ब्रह्माण्ड ही ब्रह्म रूप है। फिर, मनुष्य शरीर और भारतवर्ष में जन्म, इसमें क्या विशेषता है ? जो कि वह दुर्लभ कहा जा रहा है। प्रत्यक्ष प्रमाण से कोई भी वात विदित नहीं होती जिससे उस विशेषता का ज्ञान हो सके। फिर 'दुर्लभो मानुषो देहो, यह वात क्यों कही गयी ? एक कारण तो इसमें यह है कि मनुष्य शरीर छोड़कर अन्य योनि में प्राणी अपने प्रारब्ध कर्मों का भोग मात्र कर सकता है, भावी जन्म के लिए कुछ उन्नति जनक कर्म नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि मानव शरीर को छोड़कर अन्य शरीर भोग योनि है। कर्म योनि केवल मानव योनि ही है। कोई ऐसा कह सकता है कि मनुष्य के पास विशाल बुद्धि का भण्डार है। आज के यान्त्रिक युग में सहस्त्राधिक प्रकार के उत्पादक पालक संहारक यन्त्र (जिनकी महती विभीषिका से आज सारा विश्व संत्रस्त है, अपने को विनाश समुद्र के तट पर खड़ा समझ रहा है और जिन यन्त्रों के ऊपर निर्भर मानव आज अपने को भूधर सागर गगन पर्वत सर्वत्र ही विजयी समझता हुआ प्रकृति विजय का स्वप्न देख रहा है, वे सभी यन्त्र इसी मानव बुद्धि के ही विकास के परिणाम हैं। अतः इसी बुद्धि के कारण मानव शरीर को दुर्लभ बताया गया है,

तो यह कहना ठीक न होगा–क्योंकि अशरण शरण अकारण करुण करुणावरुणालय कर्तुंम-कर्तुमन्यथा कर्तु समर्थ (छूँछी भरे भरी ढरकावै, जब चाहे तब फेर भरावै) अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक प्रभु ने अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में एक से एक वढ़कर बुद्धिमान जीव बनाए हैं। ऐसे बुद्धिमान् बनाए हैं कि उनकी बुद्धि के सामने मानव बुद्धि चकरा जाती है। आपको अपनी बुद्धि को तीव्र करने के लिए कितना श्रम करना पड़ता है स्कूलों, कालेजों, विद्यालयों में अध्ययन कर उसका अभ्यास करना पड़ता है। तव

कहीं कोई वकील वैरिस्टर कोई डाक्टर कोई इन्जीनियर वन पाता है। फिर भी सभी मनुष्य वकील डाक्टर इन्जीनियर नहीं होते। बड़े-बड़े राजनीति शास्त्रियों ने पशु पक्षियों से राजनीति शास्त्र की शिक्षा लेने की सलाह दी है। उन लोगों का कहना है कि जिन बीस गुणों के कारण मनुष्य सम्पत्ति या विपत्ति में अथवा किसी भी अवस्था में अजेय रहता है, उन गुणों में सिंह से एक की वक से एक की कुक्कुट (मुर्गे) से चार की वायस (कौवे) से पाँच की कुत्ते से छ गुणों की और गधे से तीन गुणों की शिक्षा लेनी चाहिए।

'सिंहादेकं थकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्।
वायसात्पंचशिक्षेच्च षट्शुनः त्रीणिगर्दभात्॥'

छोटे से छोटा या बड़े से बड़ा कोई भी कार्य करना हो तो सारी शक्ति से वह कार्य पूर्ण करना चाहिए, यह एक शिक्षा सिंह से लेनी चाहिए।

'प्रभूतकार्यमपिवा यन्नरः कर्तुमिच्छति।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते॥'

बुद्धिमान् पुरुष को इन्द्रियों को अपने वश में रखकर देश-काल और परिस्थिति की अनुकूलता तथा अपनी शक्ति देखकर सब कार्य प्रारंभ करना चाहिए। इसकी शिक्षा वक (वगले) से लेनी चाहिए।

इन्द्रयाणि च संयम्य बकवत् पण्डितो नरः।
देश कालं बलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणिसाधयेत्॥

प्रत्युत्थान अर्थात् सदा सावधान एवं तैयार रहना, विना किसी की प्रतीक्षा के अवसर के अनुसार युद्ध छेड़ देना, भाई वन्धुओं में बांट कर भोजन करना, स्वयं कमाकर भोजन करना, यह चार प्रकार की शिक्षा मुर्गे से लेनी चाहिए।

प्रत्युत्थानञ्च युद्धञ्च संविभागञ्च बन्धुषु।
स्वयमाक्रम्य भुक्तञ्च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्॥

छिप कर मैथुन करना, समय-समय पर धन संग्रह करना, कभी लापरवाही न वर्तना, साशङ्क रहना, किसी पर विश्वास न करना, इन पाँचों गुणों की शिक्षा कौवे से लेनी चाहिए।

गूढमैथुनकारित्वं काले-काले च संग्रहम्।
अप्रमत्तमविश्वास माशङ्कां पञ्चवायसात्॥

वहुत भोजन करने की क्षमता, थोड़े में ही सन्तोष, गाढीनिद्रा और उसमें भी झट होश हो जाना, स्वामिभक्ति और शूरता इन ६ गुणों की शिक्षा कुत्ते से लेनी चाहिए।

बह्वाशी स्वल्प सन्तुष्टः सनिद्रो लघुचेतनः।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेतेश्वानतो गुणाः॥

वहुत थके रहने पर भी भार ढोने में आनाकानी न करना, सर्दी गर्मी की भी परवाह न करना (अर्थात् उत्तरदायित्व को सम्हालने में सदा तत्पर रहना उससे नहीं ऊबना, नहीं थकना,

नहीं घवड़ाना, किन्तु सदा ही तैयार रहना) सदा सन्तुष्ट रहना इन तीन वातों की शिक्षा गधे से लेनी चाहिए। इन वीस गुणों से युक्त मानव किसी भी परिस्थिति में कितने ही बड़े कार्य में लगने पर भी सबसे अजेय होगा।

"एतान् यो विंशतिगुणानाचरिष्यति मानवः ।
कार्यावस्थासु सर्वासु अजेयः स भविष्यति ॥"

रसायन शास्त्र में पी-एच-डी. कर लेने के वाद भी मानव बुद्धि हंस (पक्षी) की वुद्धि के आगे चकरा जाती है। आज विज्ञान इतना उन्नत है कि उसी विज्ञान के सामने मानव फूला नहीं समाता और प्रकृति विजय का स्वप्न देख रहा है। आज ऐसे यन्त्रों का आविष्कार हो गया है, जिससे कि दूध में पानी मिला है या नहीं ? मिला है तो कितना, यह सब पता लग जाता है, मीटर यंत्रों द्वारा, किन्तु वह मीटर भी ठीक ही वता पायगा, कौन कह सकता है ? यदि मीटर में ही कुछ गड़वड़ी भी हो गयी तो वहाँ वुद्धि कुछ काम नहीं देगी। कथञ्चित् यह समझ लिया जाय कि मीटर काम ठीक दे रहा है और उसने दूध तथा पानी का परिमाण वता ही दिया, तो भी यदि कहा जाय कि आप दूध अलग कर दें और पानी अलग कर दें तो यह हम सभी लोगों के लिए असम्भव ही होगा। क्योंकि अभी तक ऐसे यंत्रों का आविष्कार नहीं हुआ, जिससे दूध और पानी अलग-अलग हो जाय। यह नीर क्षीर विवेक की अद्भुत करामात हंस में विद्यमान है। दूध और पानी मिलाकर रख दिया जाय। तो हंस उसमें से दूध पी जायगा और पानी छोड़ देगा। पानी में सफेदी भी नहीं रहेगी। उन अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डनायक शतधृति कमल योनि चतुर्मुख ब्रह्मा ने अपनी सृष्टि में मानसरोवरवासी दुग्ध धवल भगवती भारती वाहन मनोरम राजहंस पक्षी का निर्माण किया है जिसके चञ्चुपुट के अग्रभाग में ऐसा चमत्कार भर दिया है कि दूध और पानी उसके सामने रख दिया जाय तो वह वुद्धि अवुद्धि सवसे परे अपनी चञ्चु का स्पर्श कराते ही क्षीर का पान कर जायगा, और पानी छोड़ देगा। इस पक्षी की यह विशेषता जव विश्व के किसी प्राणी में नहीं है तो फिर बुद्धि वैशद्य के कारण हंस शरीर को ही दुर्लभ कहना चाहिए, किन्तु ऐसी वात नहीं है। दुर्लभ मानव शरीर ही कहा गया है।

यदि यह कहा जाय कि मानव शरीर से भिन्न अन्य किसी भी शरीर से प्राणी पूंजी का सञ्चय उपभोग व्यय और पुनः सञ्चय नहीं कर सकता। केवल मानव शरीर से ही कर सकता है, इसीलिए मानव शरीर को दुर्लभ कहा गया है। क्योंकि वह सम्पत्ति सञ्चय करके सम्पत्ति के दान द्वारा अपना परलोक सुधार सकता है। मुक्त हस्त दान करके धर्मशाला, मन्दिर, बावड़ी, कूप, उद्यान आदि का निर्माण कर सकता है। शिक्षाके लिए अपने धन का सदुपयोग कर समाज तथा राष्ट्र के हित में मुक्तहस्त से सम्पत्ति का व्यय कर सकता है, तो यह वात भी नहीं। धन अन्य स्थान में भी है। मणियाँ सर्पों में भी रहती हैं, मुक्ता हाथी में होता है, और माणिक पर्वतों में होता है। सुवर्ण हीरा आदि रत्न खान से निकलते हैं। इस प्रकार भगवान् की सृष्टि अनेक प्रकार की विचित्रता से संयुक्त हैं। किन्तु, मनुष्य का कमाया हुआ धन सदा ही शंका ग्रस्त होता है। धनी लोगों पर आये दिन शासन का झण्डा-चन्दा ही नहीं, किन्तु; डण्डा सिर-पर सदा सवार रहता है। राज कर्मचारी कब आकर छापा मारकर बलात् पैसा निकाल लेंगे इसका खतरा वरावर बना ही रहता है। कभी विक्रीकर अधिकारी कभी आयकर अधिकारी आकर जबर्दस्ती सम्पत्ति ले लेते हैं। अधिक क्या कहे, कारागार में भी डाल देते हैं। इसलिए मानव द्वारा उपार्जित धन सदा ही

संशयग्रस्त रहता है। अन्य धन वालों पर यदि दृष्टि डालें तो महाविषधरभुजङ्ग, जिसके पास मणि है उसका तो कहना ही क्या? उस मणि के सामने अरबों खरबों डालर भी तुच्छ हो सकते हैं। इसी प्रकार भगवान् ने अत्यन्त चमत्कार बताने के लिए पारसमणि बनाया है जो लोहे को तत्काल भास्वर सुवर्ण के रूप में परिणित कर देता है। बहुमूल्यवान मुक्ता हाथी के मस्तक में होता है और इतनी सम्पत्ति अपने पास रखकर भी ये भुजङ्ग हाथी आदि निश्चिन्त सोते हैं। न तो इन्हें सरकार का भय है न तो ये आशङ्कित रहते हैं कि छापा मारनेवाले आरहे होंगे। न तो इन्हें इमरजेन्सी का ही भय है। न तो इनके पास कोई लिखा-पढ़ी ही है और न तो सेलटेक्स, आयटेक्स, बिक्रीटेक्स आदि के लिए किन्हीं के सामने इनको अपनी बही ही खोलनी है। समाजवाद रूप शैतान का भी भय उन्हें नहीं है। कोई समाजवादी कहने नहीं जाता कि ऐ नागराज तुमने समस्त विश्व का शोषणकर यह सम्पत्ति मणि अपने पास रखी है। उसके पास पहुँचने की किसी की हिम्मत ही नहीं होती। इधर भारत के विकास में आज का शासन जिसे मुख्य मानता है वह है मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, सूवर पालन, अधिक अन्न उपजाओ आदि इन सबके लिए भी कोई उन तक चन्दा माँगने भी नहीं जाता। अतः सम्पत्ति के कारण यदि मानव शरीर की दुर्लभता होती तो सर्प शरीर को दुर्लभ कहना चाहिए था। यदि कहा जाय कि सभी शरीरों में मनुष्य शरीर सुन्दर होता है, इसलिए मनुष्य शरीर दुर्लभ है, किन्तु; ऐसी बात नहीं। मानव शरीर की सुन्दरता थोड़े ही समय की है। युवावस्था में वह सौन्दर्य प्रकट होता है और वृद्धावस्था में उसका अभिभव प्रारम्भ हो जाता है। शरीर कुरूपता का अधिष्ठान मात्र रह जाता है। सारे काले घुँघराले बाल श्वेत हो जाते हैं।

आँख, नाक, कान, दाँत, हाथ, पैर सभी इन्द्रियाँ शनैः शनैः जवाब देने लगती है। मन के ऊपर तृष्णा का साम्राज्य छा जाता है और मानव सर्वथा पराधीनता का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होता है। अनेक प्रकार का कष्ट भोगता हुआ सदा ही दुःखी अपने आपको मानता है। अन्य प्राणियों का सौन्दर्य सदा बहार होता है। उनका रूप रंग विकृत नहीं होता। जो पशु-पक्षी जिस रंग में उत्पन्न होते हैं, वे बिना किसी बाहरी सहयोग के भी जीवन पर्यन्त वैसे ही रहते हैं। वह सदा बहार है। जिस हंस का वर्णन ऊपर कर आए हैं, उस हंस के शरीर की अद्भुत धवलिमा, शुक्र के शरीर की अद्भुत हरीतिमा और उसके चोंच की लालिमा, मयूर के पिच्छ की विचित्र चित्रकारी पत्रों-पुष्पों स्तवकों की अद्भुत काँट-छाँट मन से भी जिसका निर्माण अशक्य हो, इतनी विचित्र रचना जिस प्रभु ने किया है, उन प्रभु की अद्भुत रचना देखकर चित्रकार हाथ में तूलिका लेकर दाँतों तले अंगुली दबा कर रह जाता है।

'येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः।
मयूराश्चित्रिता येन स ते वृत्तिं विधास्यति॥'

बल के कारण भी मनुष्य शरीर दुर्लभ नहीं कहा जा सकता। संसार में एक से एक महा बलवान् पड़े हैं। सिंह, व्याघ्र, हस्ती आदि पशु बड़े से बड़े बलवान् का मान मर्दन करने के लिए पर्याप्त हैं। फिर, मनुष्य शरीर को दुर्लभ क्यों कहा गया?

न विद्या से, न धन से, न बल से, न सौंदर्य से मनुष्य शरीर दुर्लभ है, फिर वह कौन-सा गुण है,

जिसके कारण मानव शरीर दुर्लभ कहा गया है। श्री कृष्णद्वैपायन महर्षि वेद व्यास ने बड़े ही सरल ढङ्ग से उन कारणों को बताया है—

'नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नमस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥'

(श्री. भा. म. पु. ११।२०।१७)

इसी बात को श्री गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज अत्यन्त सरल सुहावनी भाषा में कह रहे हैं—यथा

"बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा ॥
नर तनु भव वारिधि कँह बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। जो न पाइ परलोक संवारा ॥

अर्थात् यह मानव शरीर सभी साधनों का धाम है। अर्थात् इसी शरीर से सभी साधन संभव है। यहां केवल रोटी, पानी, मकान, दूकान लाभ हानि के साधन की बात नहीं, किन्तु; लौकिक पारलौकिक उत्थान हो, लोक में यश बढ़े, पुण्य बढ़े, आगे पीछे कीं पीढ़ियों का उद्धार हो, मन बुद्धि चित्त अहङ्कार की शुद्धि हो, अपरोक्षानुभूति हो, ऐसे साधनों का भी धाम है। अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो यही कहना होगा कि साधन करने पर इस मानव शरीर से भगवान् की प्राप्ति हो सकती है। सभी सांसारिक सुख अर्थ और काम के भीतर आते हैं। वे प्रारब्धानुसार सभी देश और सभी काल में सुलभ हैं। किन्तु; दृश्य प्रपंच से सर्वथा अविद्ध दृक् तत्व का अपरोक्ष साक्षात्कार मनुष्य, निष्काम कर्म से, योग से, पूजा-पाठ से, ध्यान से, स्वधर्मानुष्ठान से, माता-पिता गुरु-देवता ब्राह्मण का आदर करने से भगवन्नाम के उच्चारण से, राम राम रटने से हो जाता है।

श्री प्रचेता के पुत्र महर्षि वाल्मीकि ने पहले जन्म में राम उच्चारण न हो सका तो मरा मरा जपकर ही उन्होंने ऐसा प्रचण्ड साधन किया कि सम्पूर्ण विश्व में उनका यशः शरीर श्री रामायण के के रूप में आज भी विद्यमान है। विश्व के सभी आस्तिक सज्जन उस पवित्र चरित्र के आगे आज भी नतमस्तक होते हैं। वे मधुर अक्षर वाले राम राम को कविता शाखा पर बैठकर मधुर स्वर में कूजन करने वाले कोकिल हैं—

'कूजन्तं राम रामेति मधुर मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि कोकिलम् ॥'

राम राम का कूजन-कीर्तन ऐसा प्रचण्ड साधन है कि वह इतने महत्वपूर्ण साध्य की प्राप्ति करा देता है। मानव शरीर को छोड़कर अन्य शरीर से यह साधन बन नहीं सकता। इसीलिए 'दुर्लभोमानुषोदेहः' कहा है। यदि इस साधन की बात न हो तो विश्व के अनन्तानन्त पशु पक्षी आदि अपना उदर पोषण कर लेते हैं, सो लेते हैं, बच्चा-बच्ची पैदा करलेते हैं, किन्तु; यह सब साधन नहीं, यह तो प्राकृत व्यापार है। यह व्यापार प्राणी मात्र के पास स्वाभाविक रूप से विद्यमान है साधनों की कठिनता या सरलता से

साध्य कठिन या सरल होता है। किसी महानगरी में गमनागमन के अनेक साधन होते हैं। उतने और वैसे साधन देहातों में उपलब्ध हो जाय तो साध्य की कोई विशेषता ही नहीं रह जाय। अतः देहातों में अनुपलब्ध साधन महानगरी में उपलब्ध होते हैं और वहाँ प्रत्येक साधक अपनी-अपनी रुचि सुख सुविधा के अनुसार महानगरी में प्रवेश के लिये साधन अपनाता है। उसमें किसी साधन को अच्छा और किसी साधन को खराब नहीं कहा जा सकता। कोई किसी कारण से अच्छा होता है और कोई किसी कारण से। अपने-अपने स्वभाव और परिस्थिति तथा रुचि के अनुसार साधक अपने अनुकूल साधन अपनाता है और साध्य प्राप्त करने में सफल होता है।

'रुचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिलनानापथजुषां,
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥'

(शिवमहिम्नस्तोत्र)

किसी परम महान् साध्य को प्राप्त करने के लिए अनन्तानन्त साधन (मार्ग) होते हैं। उनमें कई मार्ग होते हैं। उनमें कोई मार्ग अच्छा होता है और कोई बुरा ऐसा कहना कठिन है। किन्तु; जो जिस मार्ग पर चलता है, वह उसे ही अच्छा कहता है। प्रचार करता है और दूसरे मार्गों की आलोचना करता है। शास्त्रों में जहाँ स्तुति (प्रशंसा) और निन्दा आती है, वहाँ अपने पक्ष में दृढ़ता के लिए दूसरे पक्ष (मार्ग) की निंदा की जाती है। मीमांसा में बहुत विचार करके ऐसे सिद्धान्तों का निर्णय किया गया है। इसलिए प्रत्येक विवेकी समझदार मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह ऐसे विषयों में गम्भीरता से विचार करे तथा भविष्य को भली प्रकार विचार कर वर्तमान के विषय में निर्णय करना चाहिए। भविष्य में वर्षा ऋतु आगयी। उसमें इंधन आर्द्र हो जाएगा। भोजन निर्माण में दिक्कत होगी। यह सोचकर गर्मी में ही वर्षा के लिए ईंधन एकत्रित कर लेना बुद्धिमानी है। घर में आग लगने पर कुवाँ खोदने या नहर निकालने का प्रयत्न हास्यास्पद ही है। बुद्धिमानी इसी में है कि जब शत्रु ने चढ़ाई कर दी तब दण्ड बैठक कसरत प्रारम्भ करना हास्यास्पद ही है। बुद्धिमानी इसी में है कि जबतक शरीर स्वस्थ है, जबतक उस पर बुढ़ापा का आक्रमण नहीं होता, जबतक इन्द्रियों की शक्ति ठीक-ठीक काम कर रही है, जबतक आयु है, तभीतक कल्याण कर लिया जाय, अन्यथा उस समय कुछ भी न बन पड़ेगा और उस समय का प्रयत्न वैसा ही होगा जैसे घर में भयंकर आग लग रही हो और उस समय कुआँ खोदना प्रारम्भ किया जाय। परिणाम यह होगा कि घर जलकर भस्मसात हो जायगा। घर की सारी सामग्री भस्मसात् हो जायगी और उसी के शोक में पड़कर प्राणी कुआँ खोदना भी बन्द कर देगा। फिर हाथ मलकर पछताना ही हाथ रह जायगा। यह बात महाविद्वान भर्तृहरि इन शब्दों में कह रहे हैं।

"यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्चदूरेजरा।
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ॥

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् ।
सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥"

महात्मा विदुरजी कह रहे हैं कि प्रातःकाल जगने से लेकर सायंकाल तक ऐसा कर्म करना चाहिए, जिससे रात्रि में चैन की नींद सोवे। यदि ऐसा कर्म कर बैठा कि उसे चिंता के मारे नींद ही न आयी तो वह प्राणी विनिद्र होकर विक्षिप्त (पागल) हो जायगा, अस्वस्थ हो जायगा और उसका सारा भविष्य का सुनहला स्वप्न धराशायी हो जायगा। आठ महीना वह कर्म करना चाहिए कि वर्षा में आनन्द पूर्वक समय व्यतीत हो सके। पहली अवस्था में ऐसा करना चाहिए कि वृद्धावस्था में आनन्द पूर्वक समय बिता सके और इस लोक में ऐसा कर्म करना चाहिए, जिससे परलोक में आनन्द प्राप्त हो।

दिवसेनैव तत्कुर्यात् येन रात्रौ सुखं वसेत् ।
अष्टमासेन तत्कुर्यात् येन वर्षाः सुखं वसेत् ॥६७॥
पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत् ।
यावज्जीवेन तत्कुर्यात् येन प्रेत्य सुखं वसेत् ॥६८॥

(म. भा. उद्योग पर्व ३५।१)

किन्तु; आज का साधक, सर्वथा विवेक खो बैठा है। वह नयी-नयी विचारधाराओं को लेकर मीठी-मीठी बातें करके हलका-फुलका सस्ता चमत्कार दिखाकर रूप-स्वरूप संजाकर मयूरी मनभावनो वाणी बोलकर, सिद्धि का जामा ऊपर पहन कर, दुनिया को भुलावे में डालने में ही अपना कल्याण समझ रहा है। किन्तु, भारतवासी अनादि परम्परा प्राप्त परम पवित्र वैदिक सिद्धान्त की प्रबलतम गम्भीर छाया में करोड़ों अरबों साल से फलफूल रहे हैं तथा अपने आपको वेद वृक्ष को छाया में स्थित होने का अद्भुत अनुपम सुख अनुभव करते आ रहे हैं। उन महामहिमामय गौरवपूर्ण मार्ग दर्शक वेदादिशास्त्रों का विशद व्याख्यान रामायण महाभारतादि आर्ष इतिहास पुराण, उपपुराण, धर्मशास्त्र स्मृतियाँ आदि करती हैं। किन्तु; सिद्धि का जामा ओढ़े आज का साधक अपने क्षुद्र अशुचि स्वार्थवशात् वेदमन्त्रों रामायण महाभारतादि वाक्यों का मनमानी विशृंखलित अर्थ करके सनातन धर्म को भरपेट पानी पी-पीकर कोसता है। किन्तु, यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई भो आज तक अपने सार शून्य के थोथे चमत्कार के बल पर उक्त अविनाशी सिद्धान्तों का अनादर करके उस सर्वान्तरात्मा रूप साध्य को प्राप्त नहीं कर सका है। चन्द दिनों के लिए अथवा कुछ क्षणों के लिए उसकी सिद्धियाँ चमकती हैं, किन्तु जैसे बरसाती कीड़ा खद्योत (जुगनू) सावन भादों की अँधियारी रात्रि में अपना प्रकाश फैला कर अपने आप को कृतार्थ समझे, वैसे ही यह बात है। अतः आज के इन चतुर चमत्कारी जनों के तथाकथित भगवान् तथाकथित आचार्य तथाकथित साहित्यकार आदि के चक्कर में न पड़कर उन्हीं अनादि परम्परा प्राप्त वेदशास्त्रों की अलभ्य सघन छाया में अपने आश्रम स्थल को पुनः ग्रहण करना नितान्त अनिवार्य है।

हमारे विचार से इन श्रद्धा सम्पन्न वेदादिशास्त्रमण्डित साधनों में सफलतादायक कामना पूरकवांछा कल्पतरु कोई ऐसा साधन चुन लेना चाहिए, जिससे यह लोक भी बने और परलोक भी बने। भक्ति विरहित ज्ञान अज्ञान है योग कुयोग है और वेदान्त शुष्कचिन्तन मात्र ही ठहरता है। उसमें भी अपना बुद्धि वैभव विश्व में प्रख्यात करने के लिए शास्त्रार्थ किया जाता है। कुछ दुराग्रही लोग अपने मन में दृढ़ अभिनिवेश के कारण समुचित युक्तियुक्त प्रतीत होने पर भी पूर्ववाले मत में ही आग्रह रखते हैं। वे पूर्वाग्रही लोग अन्तर्मुख तो होते नहीं, बहिर्मुख ही होते है। इसलिए ऐसे लोगों का सारा वेदान्त विचार वैखरी वाणी की फूलझड़ी मात्र है। वह भोग सम्पादन करने वाली ही चीज ठहरती है। मोक्ष के लिए वह बिल्कुल ही कारगर नहीं होती। 'वाग्वैखरी शब्द झरी भुक्तये न तु मुक्तये। ऐसे लोगों के लिए शास्त्र कहते हैं कि—'वागुच्चारोत्सवमात्रं तत्क्रियां कर्तुमक्षमाः। कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव ॥ कुशलाः शब्द वार्तायां वृत्तिहीनास्तुरागिणः। कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव ॥

उनकी वाणी का उच्चारण दूसरे लोगों के मन को आनन्दित कर देता है। एक मात्र यह उसका फल हैं। क्योंकि शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध से पृथक् इनके साधक चक्षु श्रोत्र घ्राण रसना त्वगादिबहिरिन्द्रियों और अन्तःकरण से पृथक् कार्यकरण संघात से पृथक् निर्दृश्यदृक तत्व के अनुसंधान में ऐसे लोग विफल होते हैं।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म आदि वाक्य बोलते अवश्य हैं।
पर परं ब्रह्म का एकारित वृत्ति उनकी नहीं होती ॥

ये लोग विषय के कीड़े होते हैं। जैसे फाल्गुन मास में बच्चे लिङ्ग भगादि अश्लील शब्दों का उच्चारण करते हैं। परन्तु विषय ज्ञान शून्य होते हैं। वैसे ही ये ज्ञानी लोग भी प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परब्रह्म बोधक वाक्यों का उच्चारण करते हुए भी उसके ज्ञान में शून्य हैं। उनकी वृत्ति में वह भासता भी नहीं है। वह तत्व तो नासन्नसन्न सदसन्न महान्न चाणुर्न स्त्री पुमान्न च नपुंसकमेक बीजम्। वह तत्त्व न सत् है, न असत् है, न सदसत् है, न महान है, न अणु है न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है, किन्तु, एक मात्र स्थूल सूक्ष्म व्यष्टि निखिल विश्व का कारण मात्र है। वह कारण होते हुए भी कारण नहीं है। वह तत्त्व इस तरह कैसे मन में आसकता है? अथवा वाणी उसका निरूपण कर सकती है? वह तो तभी मन में आसकता है, जबकि प्राणी से अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार वेदादिशास्त्रों द्वारा विहित कर्म फल कामना शून्य होकर किया जाय और उसे अपने ध्येय ज्ञेय परमाराध्य प्रियतम प्राण-धन-प्रभु के पादारविन्दों में समर्पण किया जाय। यही उस प्रभु की आराधना है।

यद्यपि 'अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत। अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं नधृष्ण मर्चत। (ऋ-सं. ८।६९।८) ऋग्वेद संहिता के आठवें मण्डल के उनहत्तरवे सूत्र का यह आठवां मन्त्र उस परमैश्वर्य सम्पन्न परमात्मा की अर्चा पूजा के लिये बुद्धिमान लोगों को प्रेरणा दे रहा है। हे बुद्धिमान् लोगों उस अशरणशरण अकारण करुणा करुणावरुणालय कर्तुमकर्तुम न्यथा कर्तुं: समर्थ (छूंछी भरे-भरी ढरकावै। जब चाहे तब फेर भरावे।) परमैश्वर्य सम्पन्न परमात्मा की अर्चा पूजा करो। केवल सामान्य ही अर्चा पूजा नहीं किन्तु पञ्चोपचार

चतुषष्ठ्युपचार राजोपचार से ऊँचे-से-ऊँचे रूप में पूजा करो। हे बुद्धिमान लोगों! बुद्धि का तकाजा यही है कि आप वारंवार उस प्रभु की पूजा करो। केवल अपने ही पूजा करने की वात नहीं, किन्तु; अपने पुत्रों पौत्रों, प्रपौत्रों को कहो कि वे लोग भी पूजा करें और पूजा के काम में लग जायें। जैसे कोई अपना अपमान करने के लिए तैयार होता है तो लोग उसके अपमान के डर से सम्मान करना प्रारम्भ करते हैं और भूरि-भूरि उसका गुणगान करते हैं। उससे प्रभावित होकर अपमान करने वाला अपमान नहीं करता, उसी प्रकार भगवान् के भय से सूर्य चन्द्रादि सभी अपने-अपने कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। अहर्निश निरन्तर सूर्य भ्रमण करता है यह नहीं होता कि वह एक क्षण के लिए विश्राम ले। चन्द्रमा का सतत् शुक्ल पक्ष में वृद्धि कृष्ण पक्ष में क्षय और उसी के अनुसार ऋतुओं का आगमन तिथियों की निष्पत्ति और उन्हीं तिथियों के अनुसार समुद्र में ज्वार-भाटा का उद्गम, यह सभी प्रकृत प्राकृत कर्म किसी एक अन्तर्यामी के सञ्चालन में सुव्यवस्थित चल रहा है। उपनिषद् कहती है मुहद्भयं वज्रमुद्यत्‌म्,[कठोप० २.३.२] हम यदि कार्य न करेंगें तो परमात्मा का वज्र हमारे सिर पर तना है वह तत्काल गिर कर हमारा विनाश कर देगा। इसी भय से आक्रान्त होने के कारण सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, विद्युत् पृथ्वी समुद्र ग्रह नक्षत्रादि सभी अपने-अपने कार्यों में लगे हैं। 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥' (कठोप० २।६।३) अग्नि उसी परम कारण सर्वाधार,सर्वाधिष्ठान अशरण शरण अकारण करुण करुणा वरुणालय (छूछी भरे, भरी ढरकावे, जब चाहे तब फेर भरावे।) के भय से ही अग्नि अपने ज्वलन और प्रकाश कार्य में सूर्य अपने प्रकाश और दिन रात्रि विभाग कार्य में, इन्द्र अपने वर्षा आदि द्वारा प्रजा के कार्य में वायु अपने संचरण प्राणन अपानन आदि कार्य में मृत्यु प्रजा संहरण कार्य में लगा हुआ है। यदि उसका भय न हो तो ये क्यों नियमित अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त होकर लगे रहें। यही वात, तैत्तिरीय उपनिषद् भी कह रही हैं। "भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। भी षास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः। (कठोप० २।६।३) अग्नि उसी परम कारण सर्वाधार सर्वाधिष्ठान अशरण अकारण करुण करुणा वरुणालय (छूछ भरे भरी ढरकावै, जब चाहे तब फेर भरावै) के भयसे ही अग्नि अपने ज्वलन और प्रकाश कार्य में सूर्य अपने प्रकाश और दिन रात्रि विभाग कार्य में इन्द्र अपने वर्षा आदि द्वार प्रजा जीवन के कार्य में वायु अपने प्राणन अपानन आदि कार्य में मृत्यु अपने प्रजा संहरण कार्य में लगा हुआ है यदि उसका भय न हो तो ये क्यों नियमित अपने- अपने कार्यों में प्रवृत्त होकर लगे रहें। यही बात तैत्तिरीय उपनिषद् भी कह रही है। "भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः।

भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः (तै. उ. २।८)

यही तात्पर्य पहले भी कहीं हुयी ऋग्वेद की ऋचा में 'पुरं न धृष्णु' अर्थात् जो सभी नगरवासी-जनों पर राष्ट्रवासीजनों के अपमान में सक्षम है उससे रक्षा के लिए उसका पूजन अर्चन सत्कार सभी लोग अपनी शक्ति के अनुसार करते हैं। वैसे ही आप लोग भी उसका पूजन अर्चन करें क्योंकि आपके पास बुद्धि है। उस बुद्धि का सदुपयोग इसी में है कि इससे सर्वाधिष्ठान स्वप्रकाश प्रभु का पूजन अर्चन किया जाय।

इस पूजन के ६ प्रकार शास्त्रों ने बताये हैं—(१) पञ्चोपचार, (२) दशोपचार, (३) षौडशोपचार (४) अष्टत्रिंशदुपचार, (५) चतुःषष्ठ्युपचार, (६) अष्टोत्तर शतोपचार।

इसके अतिरिक्त राजोपचार भी पूजन है जिसमें राजा के समान छत्र सिंहासन चामरादि से [पूजन होता है। (१) गन्ध (२) पुष्प (३) धूप (४) दीप (५) नैवेद्य। इन पाँचों प्रकार से की जाने वाली पूजा पञ्चोपचार कही जाती है। 'गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं पञ्चमं स्मृतम्'। (१) अर्घ्य (२) पाद्य (३) आचमन (४) मधुपर्क (५) आसन और पञ्चोपचार वाले पाँच ये दश उपचार कहे जाते हैं। 'अर्घ्यं पाद्यमाचमनं मधुपर्कासनानि च गन्धादि पञ्चकं चेति उपचारा दशो दिताः॥' यदि अन्य उपचार सम्भव न हो तो केवल गन्ध पुष्प से भी (दोही उपचारों से) पूजा हो जाती है। तिथितत्व में यह बात कही गयी है। जाबालि महर्षि (१) ध्यान (२) आवाहन (३) भक्ति पूर्वक वस्तु समर्पण (४) नीराजन और (५) पुष्पांजलि पूर्वक प्रणाम ये पाँच उपचार मानते हैं। 'ध्यानमावाहनं चैव भक्त्या यच्च निवेदनम्। नीराजनं प्रणामश्च पञ्चपूजोपचारकाः॥' ज्ञानमाला के मतानुसार (१) अर्घ्य (२) पाद्य (३) आचमन (४) स्नान (५) वस्त्र (६) गन्ध (७) पुष्प (८) धूप (९) दीप (१०) नैवेद्य ये दश उपचार हैं। (१) आसन (२) स्वागत (३) अर्घ्य (४) पाद्य (५) आचमनीय (६) मधुपर्क (७) स्नान (८) वस्त्र एवं आभूषण (९) सुगन्ध (१०) पुष्प (११) धूप (१२) दीप [१३] नैवेद्य [१४] माल्यार्पण [१५] नमस्कार और [१६] विसर्जन ये १६ उपचार ज्ञानमाला के मत से हैं।

'आसनं, स्वागतं, चार्घ्यं पाद्यमाचमनोदकम्।
मधुपर्कार्पणं स्नानं वसनाभरणानि च॥

सुगन्धः सुमनोधूपौ दोपो नैवेद्य एवच।
माल्यानुलेपने चैव नमस्कारो विसर्जनम्॥'

नागदेव के मत में [१] आवाहन [२] आसन [३] पाद्य [४] अर्घ्य [५] आचमनीय [६] स्नान [७] वस्त्र [८] उपवीत [९] गन्ध [१०] माल्य [११] धूप [१२] दीप [१३] नैवेद्य [१४] नमस्कार [१५] प्रदक्षिणा [१६] उद्वासन यह सोलह उपचार हैं।

'आवाहनासने पाद्यम् अर्घ्यमाचमनोदकम्।
स्नानं वस्त्रोपवीते च गन्धमाल्यादिभिः क्रमात्॥

धूपं दीपं च नैवेद्यं नमस्कारं प्रदक्षिणा।
उद्वासनं षोडशकमेवं देवार्चने विधिः॥'

१ अर्घ्य २ पाद्य ३ आचमन ४ मधुपर्क ५ तदङ्ग आचमन ६ स्नान ७ नीराजन ८ वस्त्र ९ आचमन १० उपवीत ११ पुनराचमन १२ भूषण १३ दर्पण १४ गन्ध १५ पुष्प १६ धूप १७ दीप १८ नैवेद्य १९ पानीय पय आदि २० आचमन २१ करोद्वर्तन २२ ताम्बूल २३ दक्षिणा २४ अनुलेपन २५ नीराजन २६ पुष्पाञ्जलि २७ गीत २८ वाद्य २९ नृत्य ३० स्तुति ३१ प्रदक्षिणा ३२ पुष्पाञ्जलि ३३ नमस्कार तथा पाँच उपचार के अर्थात् ध्यान १ आवाहन २ आसन ३ स्वागतप्रश्न ४ और वाणी द्वारा सर्वस्वनिवेदन ५ ये अड़तीस उपचार हैं।

'अर्घ्यं पाद्यमाचमनं मधुपर्कमुपस्पृशम् । स्नानं नीराजनं वस्त्रमाचार्यं चोपवीतकम् ।
पुनराचमनं भूषा दर्पणालोकनं ततः । गन्धपुष्पे धूप दीपौनैवेद्यं च ततः क्रमात् ।।
पानीयं तोय मस्वाय हस्तवासस्ततः परम् । ताम्बूलमनुलेपं च पुष्पदानं ततः पुनः ।।
गीतं वाद्यं तथा नृत्य स्तुतिचैव प्रदक्षिणाः । पुष्पाञ्जलिनमस्कारौ अष्टत्रिंशत्समीरिताः ।।

इन उपचारों से पूजन सबसे वन नहीं सकता । कल्याण सबका ही होना चाहिए, सबके लिये ही कोई पूजन का मार्ग निकलना चाहिए । इस विषय में श्रीमद्भगवद का वचन है—

'यतः प्रवृत्तिर्भूतानां ये न सर्वमिदं ततम् । स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवः ।।

(श्री भ. गी १८।४६)

जिस सर्वान्तर्यामी से सभी प्राणियों की गतिविधि प्रवृत्ति होती हैं जिससे यह चराचर अखिल विश्व व्याप्त है । उसके पूजन का सबसे श्रेष्ठ साधन प्राणी का अपना कर्म है । अर्थात् निष्काम भाव से अपने-अपने वर्ण और अपने-अपने आश्रम के अनुसार कर्म करके उसे प्रभु पादारविन्दों में समपण किया जाना भगवान् की सर्वोत्तम सेवा से यह लोक भी बनता है और परलोक में भी सुन्दर भोग प्राप्त होते हैं । तथा अन्त में परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति होती है । सत्यनारायण के पूजन करने से अपने वर्ण धर्म वैश्य का वर्ण धर्म व्यापार उसे करते हुए भगवच्चरणारविन्द का आश्रय लेनें से साधु वैश्य इस लोक में भी आनन्द से रहा और अन्त में भगवान् सत्यनारायण को प्राप्त किया ।

'इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते सत्य पुरं ययौ ।।'

वह इस लोक भूलोक में मानव शरीर से अपार सुख सम्पत्ति पाया । पुत्र पौत्र प्रपौत्र पाया दौहित्र पाया, मान प्रतिष्ठा यश प्राप्त किया, अपना हित किया, समाज जाति राष्ट्र का हित किया ।इस लोक में ऋद्धि सिद्धि पायी, सुन्दर स्वस्थ शरीर पाया, दीन दुःखियों को देखकर दया करने की पीड़ितों को देखकर परोपकार करने की प्रवृत्ति पायी, ऐसी मधुर वाणी पायी जिससे सबसे ही उसे सम्मानमिला । इस लोक में आत्म हित करते हुए राष्ट्र का हित करते हुए अन्त में भगवच्चरणारविन्द को प्राप्त हुआ । जहाँ जाकर पुनः इस संसार में आना नहीं पड़ता । यहाँ तो पुनः पुनः जन्म पुनः पुनःमाता के उदर में शयन जहाँ एक तरफ विष्ठा की थैलो एक तरफ मूत्र की थैली वह भी जठराग्नि से बारंबार जलती हुयी उसो के बीच रहना पड़ता हैं फिर भयङ्कर ज्वाला से दग्ध होकर तड़पना पड़ता है फिर बाहर आकर और वहाँ भी अनादि अनन्त निरवच्छिन्न महाकाल का ग्रास वनने के लिये बाध्य होना पड़ता है । इन सभी से भगवच्चरणारविन्द प्राप्त होने पर छुटकारा हो जाता है । सनातन पदवो प्राप्त होती है ।

'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'

(श्री भ० गी० १५।६)

इसे गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी महाराज के शब्दों में कहा जाय ।

'सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अन्त काल रघुपति पुर जाहीं ॥'

यहाँ ऐसा सुख पाते हैं जो स्वर्ग में देवताओं को भी दुर्लभ है। कहा जा सकता है कि भला स्वर्ग में क्या सुख दुर्लभ है जो यहाँ प्राप्त होता है। क्योंकि इस लोक के लिए भगवान् स्वयं श्रीमुख से कहते हैं—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् । श्री. भ. गी. ९।३३

यह लोक दुःखमय है। यहाँ जो सुख प्राप्त होता है वह भी अस्थिर है। क्षयी है। यह लोक भी क्षयी है। इस लोक को प्राप्त कर इसमें भगवद्भजन ही करनी चाहिए। और स्वर्ग में दुःख नहीं होता। जैसे यहाँ सुख के अनन्तर दुःख और दुःख के अनन्तर सुख प्राप्त होता है वैसा स्वर्ग में नहीं होता। वहाँ तो एक सुख के अनन्तर दूसरा सुख उसके अनन्तर तीसरा सुख इस तरह सुख की परम्परा ही प्राप्त होती रहती है। जिस पदार्थ को प्राप्त करने की इच्छा होती है वह तत्काल प्राप्त होता है इसीलिए उस लोक को स्वर्ग कहते हैं।

यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् ।
अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वः पदास्पदम् ॥

फिर जब वहाँ सुख ही सुख है तो ऐसा कौन सा सुख है जो वहाँ प्राप्त नहीं होता। सुनिये—

इक्षोर्विकारा मतयः कवीनां गवां रसो बालकभाषणञ्च ।
ताम्बूलमन्नं युवतीकटाक्षाः स्वर्गे पदार्था नमवन्ति चैते ॥

इक्षु [गन्ने] से बने हुए पदार्थ [गुड़ चीनी मिश्री गुलकन्द आदि] कवियों की बुद्धि [कल्पना प्रधान बुद्धि जिससे किसी को बहुत बढ़ाचढ़ा कर प्रशंसा की जाय अथवा बहुत ही हीनता वर्णन कर किसी को अति नीच कहा जाय] गोरस [दूध दही आदि] बालकों का भाषण [मधुरकल भाषण कारण, वहाँ देवताओं की सन्तान नहीं] ताम्बूल अन्न और युवती के कटाक्ष [स्वर्ग. लोक में देवों देवियों के पलक गिरते नहीं इसलिए कटाक्ष नहीं हो सकता] ये पदार्थ स्वर्ग में नहीं होते हैं। इसीलिए महाकवि कालिदास कहते हैं महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः, अर्थात् युवावस्था हो, सुन्दर स्वस्थ शरीर हो, धन धान्य से परिपूर्ण राज्य हो और अव्याहत शासन हो, अर्थात् आज्ञा का पालन तत्काल होता हो तो वही इन्द्र पद है। इन्द्र पद और राज्य में इतना ही अन्तर है कि यहाँ भूमि का स्पर्श होता है और देवता लोग भूमि पर स्पर्श नहीं करते। इसलिए ऐसा साधन अपनाना चाहिए, जिससे यह लोक परलोक दोनों बने और अन्त में परब्रह्म परमात्मा मिले। भला कोई अन्याय अत्याचार दुराचार दुर्विचार से अनन्त धन धान्य एकत्रित किया। दिन रात छल छद्म कपट का प्रयोग किया। लक्षपति कोटिपति अरबपति बन गये, अन्त में पाप के परिणामस्वरूप लाखों करोड़ों वर्षों तक नरक भोगना पडा तो उस अत्याचार अन्याय की कमाई से क्या लाभ ? नरक अतीन्द्रिय है, स्वर्ग अतीन्द्रिय है अर्थात् इनका ज्ञान इन्द्रियों से

नहीं होता, किन्तु शास्त्र मात्र से होता है। एकबार इनकी उपेक्षा भी करे तो भी यह सोर्ज की वृद्धावस्था आगयी, आँख से देखना कम हो गया कान से सुनना कम होगया, हाथ पैर में पहली शक्ति नहीं रह गयी, फिर रोगों की सेना शरीर पर आक्रमण किया शरीर और क्षीण होगया जर्जर होगया अन्त में अस्पताल में दाखिल हुए और वहाँ की भीषण परिस्थिति का सामना करना पड़ा तो उस समय अन्याय अत्याचार का स्मरण आता है। फिर तो सिवाय पछताने के और कुछ भी हाथ नहीं लगता। फिर उससे भी वदतर एक और स्थिति है, जरा उधर भी ध्यान देना चाहिए। कल्पना कीजिए। यदि भाग्य ने साथ नहीं दिया, अन्याय अत्याचार दुराचार से कमाई हुयी सम्पत्ति क्षीण होने लगी काम धन्धा रोजी - रोजगार व्यापार सब ठप्प पड़ गया पैसा भी चौपट हो गया स्वयं दीन हीन दरिद्र कंगाल ठन-ठनपाल होगये। जीविका का सारा साधन समाप्त हो गया, वह कैसी भयावह स्थिति होगी। इसीलिए शास्त्रों का कहना है--

'या राका शशिशोभना गतधना सायामिनी यामिनी
या सौन्दर्य गुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनो।
या गोविन्द रसप्रमोदमधुरा सा माधुरी माधुरी
या लोकद्वय साधनी तनुभृतांसा चातुरी चातुरी ॥

छल कपट से धोखा-धड़ी से अन्याय-अत्याचार-दुराचार-दुर्विचार-व्यभिचार से तो भला क्या हो सकता है ? कल्पना कीजिए, ऐसा ही करने वाले दिन-रात दुनियाँ की निन्दा करते-करते अथवा सत्य झूठ के फन्दे गढ़ते-गढ़ते दूसरों का, गरीबों का, सीधे-साधे लोगों का, गला रेतते-रेतते यदि जीवन का अधिकांश भाग वीत गया, थोड़ी आयुष्य शेष रही और उस समय हठात् पक्षाघात हुआ, शरीर शय्या पर पड़े-पड़े सर्वथा परवश होगया अथवा और किसी रोग का आक्रमण हुआ, नर्सिंग होम में दाखिल होना पड़ा, आक्सीजन की नली प्राण वायु को ठीक करने के लिए लगानी पड़ी अथवा मूत्राशय में मूत्र रुक गया नली डालकर लघुशङ्का निकालनी पड़ी अथवा मल निष्क्रमण स्थान सड़ गया आपरेशन करके वहाँ का माँस काटकर लकड़ी जोड़कर रखना पड़ा अथवा आँख चली गयी, सर्वथा शरीर परवश होगया, रोगों की वाहिनी द्वारा यह हर वलिष्ठ कायाजर्जर होगयी, अस्पताल की भयानक स्थिति भोगनी पड़ी तो सारा धन तथा सुख किस काम का ? इतने अथक परिश्रम से जो पैसा पैदा किया, वह पानी की तरह वहने लगा तथा पैसे की आमदनी का स्रोत रुक गया, काम धन्धा रोजी-रोजगार व्यवहार-व्यापार सब ठप्प पड़ गया, दरिद्रता से, कङ्गाली से, दीन-हीन होगया, फिर साधन विरहित होकर कितना कष्ट अनुभव करना पड़ेगा, इसकी भी कल्पना कर लीजिए। फिर हमारे सनातन धर्म से अतिरिक्त कौन सा धर्म है, जोकि इस अवस्था में भी उसका (उस रोगी का) किसी कर्म (मानस चिंतन) द्वारा कल्याण वता सकता है।

यही सनातन धर्म ही इतना विशाल है जो किसी को भी कल्याण के मार्ग से निराश नहीं करता। इससे प्रत्येक अवस्था में दारिद्रय में, दुःख में विपत्ति में दोनहीन परतन्त्र दशा में कल्याण का मार्ग सवके लिए खुला हुआ है। इसी अवस्था को लक्ष्य कर कहा है।

'सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी।
तथापि नरकं यान्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥

कल्याण का साधन भगवन्नाम है, वह इतना सुगम इतना सरल, फिर भी अपनी कहीं पराये से खरीदकर अथवा भाड़े पर नहीं लायी गयी। अपनी जीभ चाहे जैसा उसका उपयोग करो और कुछ साधन वन नहीं सकता, व्रत बन नहीं सकता, यज्ञ यागादि बन नहीं सकता, उस परिस्थिति में कल्याण कैसे हो ? उसी के लिए शास्त्रों ने कहा भगवन्नाम बरावर उच्चारण कर सकते हैं। भगवान् के नाम में जितना पाप नाश करने की शक्ति है पापो प्राणी में उतना पाप करने की भी शक्ति ही नहीं है। फिर भगवन्नाम का उच्चारण कर प्राणी अपना कल्याण कर सकता है। वह न कर अन्य कुछ करता हुआ नरक जाये तो इससे बढ़कर आश्चर्य क्या है ? फिर केवल परलोक की ही वात नहीं, इस लोक में भी धन धान्य सम्पत्ति प्राप्त होती है। श्री पुष्पदन्ताचार्य कहते हैं—

व्रजति स शिवसमीपं रुद्रतुल्यस्थाऽत्र।
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥

अर्थात् मरने के वाद प्राणी भगवान् शङ्कर के तुल्य हो जाता है और उन्हीं के साथ निवास करता है तथा इस लोक में विपुल मात्रा में धन प्राप्त होता, दीर्घ आयुष्य मिलती है। पुत्र पौत्र प्रपौत्र भी मिलते हैं इसलिए ऐसा ही साधन होना चाहिए, जो कि लोक परलोक दोनों में कल्याणकारी हो।



प्रभु भक्ति

विना प्रभु भक्ति के सभी साधन, सघन जङ्गल है। वहाँ जाकर प्राणी अनेक प्रकार के असंस्कृत अपरिपक्व उलझनों में फँस जाता है और वहाँ से छुटकारा पाना कठिन होता है। इन अनेक सम्बन्धों का सम्पादन करता हुआ प्रभु भक्ति विमुख प्राणी आगे वढ़ा और वढ़कर महान् से महान् स्थान प्राप्त कर लिया, फिर भी सदा ही वहाँ से पतन का भय वना रहता है। महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज वेदों द्वारा भगवान् की स्तुति कराते हुए कह रहे हैं—

'जो ज्ञान मान विमत्तभवभयहरणिभक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि पतत हम देखत हरी॥'

वेद कह रहे हैं हे भगवान! जो ज्ञान योग दम शम आदि साधनों के मद में चूर रहते हैं और भव भयहारिणी सर्वक्लेश नाशिनी आप की भक्ति का आदर नहीं करते। हम वरावर ही देखते हैं कि वे सुर दुर्लभ पद को पाकर भी वहाँ से पतित हो जाते हैं। अनादि सृष्टि में यही चक्र हम वरावर देख रहे हैं। कर्म का फल भोगने के लिए स्वर्गादि फल भोगने के अनन्त शरीर प्राप्त होते हैं। शरीर से प्राणी को कर्मों के अनुसार प्रिय-अप्रिय फल प्राप्त होता है—और पुनः धर्माधर्म रूप कर्म प्राप्त करता है। क्योंकि शरीर (भोगायपतन) में और अनुकूल प्रतिकूल विविध भोगों का इस प्राणी का दृढ़ अभिनिवेश होता है।

फिर उस धर्म और अधर्म का फल भोगने के लिए परलोक गमन होता है। वहाँ से पुनः आकर शरीर ग्रहण करना पड़ता है। यही चक्र वरावर चल रहा है।

'क्रिया शरीरोभदव हेतु राहता प्रिया प्रियौ तौ भवतः सुरागिणः।
धर्मे तरौ तत्र पुनः शरीरकं पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः॥'

निष्काम भाव से किया हुआ कर्म वुद्धि शुद्धि द्वारा प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परब्रह्म के अपरोक्ष साक्षात्कार का कारण वनाता है। किन्तु, तभी, जव, वह भगवच्चरणारविन्द में समर्पित हो। यदि भगवच्चरणारविन्द में समर्पित नहीं हुआ, तो अपरोक्ष साक्षात्कार के लिए समर्थ नहीं होगा। श्री मद्भागवत् का वचन है।

'नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलंनिरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वद भद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्।'

(श्री. भा. मा. पु. १।५।१२) नैष्कर्म्य व्रह्मरूप निरञ्जन उपाधि निवर्तक सजातीय विजातीय स्वगत भेद शून्य ज्ञान भी भगवद्भक्ति शून्य होने पर सही माने में अपरोक्ष साक्षात्कार कराने में समर्थ नहीं होता। जब ज्ञान की ही ऐसी वात है तो अनुष्ठान काल में और फल भोग काल में बन्धन रूप होने के कारण सदाही अभद्र (दुःख रूप) काम्य कर्म के विषय में क्या कहा जाय? यदि फल कामना शून्य होकर भी प्राणी ने अनुष्ठान किया, फिर भी काम्य कर्म तो काम्य कर्म ही ठहरा। प्रभु पादारविन्द में उसका समर्पण हुआ नहीं, वह परम्परया भी प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परब्रह्म का अपरोक्ष साक्षात्कार कैसे करा सकता है? क्योंकि कर्म ही वहिर्मुखप्रवृत्ति के कारण हुए हैं। फिर वह अन्तःकरण के मंत्रों का शोधक कैसे बन सकता है? शास्त्र कहते हैं—ज्ञान कारण सामग्यां भक्तिरेव गरीयसी" ज्ञान प्राप्ति के साधनों में सर्वश्रेष्ठ भक्ति है। पुरुषः स परः पार्थ भक्त्यालम्भनस्तथा (श्री. भ. गी. ८।२२) उस परम पुरुष की प्राप्ति में अनन्य भक्ति ही एक मात्र मुख्य कारण है।

श्रेयः स्रुतिभक्ति मुदस्यते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलं बोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूल तुषावधातिनाम् ।। (श्री. भा.)

भगवान् सर्व लोक पितामह ब्रह्मा जी कह रहे हैं कि हे विभो ? झरना से पानी जैसे अनवरत-वहा करता है, वैसे ही अनवरत कल्याण का स्रोत बहाने वाली आपकी भास्वती भगवती भक्ति की अपेक्षा कर जो लोग ज्ञान प्राप्ति के लिए केवल शास्त्राभ्यास आदि प्रयत्नों में निरत रहते हैं, उन्हें ज्ञान तो प्राप्त होता नहीं, किन्तु, वे लोग केवल क्लेश के भागी होते हैं। जैसे थोड़ी मात्रा में धान्य को छोड़कर बहुत मात्रा में मोटे-मोटे भूसे को कूटने से उसमें से धान तो मिलता नहीं किन्तु केवल क्लेश ही हाथ लगता है। वही स्थिति ऐसे लोगों की होती है। यह नहीं सोचना चाहिए कि--

'यथैधांसि समिद्धोऽग्नि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।। (श्री भ. गी. ४।३७)

जाज्वल्यमान अग्नि जैसे सभी काष्ठों को जलाकर भस्म कर देती हैं, वैसे ही ज्ञान सभी कर्मों को भस्म कर देता है। महान् से महान् ज्ञानी को भी भगवदपराध भगवन्नामापराध के कारण अचिन्त्य शक्ति माया वन्धन में डाल देती है। वासना भाष्य में गृहस्थ परिशिष्ट का निम्न वचन उद्धृत है।

'जीवन्मुक्ता अपि पुनर्बन्धनं यान्ति कर्मभिः ।
यद्यचिन्त्य महाशक्तौ भगवत्यपराधिना ।।'

अर्थात् भगवदपराधी भले ही वह ज्ञानी क्यों न हो कर्मबंधन में आ ही जाता है। भक्ति चन्द्रोदय में एक वचन किसी पुराण का उद्धृत है—

नानुव्रजति यो मोहाद् व्रजन्तं जगदीश्वरम् ।
ज्ञानाग्निदग्ध कर्मापि स भवेद् ब्रह्मराक्षसः ।।,

अर्थात् वह विशुद्ध ज्ञानी जिसके कर्म द्वार भस्म हो चुके हैं यदि पथारूढ़ होकर गमन करते हुए भगवान् का अनुगमन नहीं करता तो वह भी भयंकर ब्रह्म राक्षस होता है। इसीलिए कहा गया है कि—

'आरूह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनाहतयुष्मदङ्घ्रयः

'अर्थात् श्री भगवच्चरणारविन्द का अनादर करने के कारण ऊँचे से ऊँचा पद पाकर भी प्राणी का वहाँ से पतन हो जाता है।

प्रभु पादारविन्द के भजन के लिए, प्रभु की भक्ति का प्रकार जानने के लिये, प्रभु सेवा का अधिकार प्राप्त करने के लिये आन्तर बाहय दोनों प्रकार की शुद्धि समझने के लिये सर्व प्रथम गुरु की शरण जाना चाहिए। मातापितृसहस्रादपि परमहितैषिणी भगवती श्रुति कहती है—यथा—

'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभि गच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं
ब्रह्म निष्ठम् ।, (मुण्डको० १।२।१२)

अर्थात् उसके ज्ञान के लिए श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण जाना चाहिए। श्री भगवद्गीता का वचन है—

'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ।। (श्री भ. गी. ४ । ३४)

श्री गुरुदेव की शरण जाकर प्रणाम करके आदर पूर्वक प्रश्न करके गुरु की सेवा द्वारा ही वह तत्व जाना जा सकता है। भगवती श्रुति कहती हैं कि—

'तस्मै सविद्वान् पसन्नाय सम्यक प्रशान्तार्थं च जितेन्द्रियम् ।, (मुण्डकोप० १।२।१३)

श्री तोरकाचार्य जी ने यह प्रसंग इस रूप में वर्णित किया है।

''सकलं मनसा क्रियया जनितं संवेक्ष्य विनाशित यातु जगत् ।
निरविधत कश्चिदतो निखिलादविनाशि कृतेन नलभ्यमिति ।। १ ।।
प्रतिपित्सु रसाव विनाश पदयति धर्मरतो यांतिमेव गुरुम् ।
प्रणिपत्य निवेदितवान् स्वमतम् ।। २ ।।
'भगवन्नु दधौमति जन्मे जन्मे सुख दुःख झपे पतित व्यथितम ।
कृपया शरणागतमुद्धर मां परिपाहि शरन्य अनन्य गतिम् ।। ४ ।।

अर्थात् लाखों करोड़ों मनुष्यों में कोई एक सौभाग्यशाली भगवदुन्मुख होता है और उन करोड़ों में कोई ही तत्व ज्ञान प्राप्त करता है।

'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः ।। (श्री भ. गी. ७।३)

ऐसा ही कोई सौभाग्यशाली हुआ और उसे विचार हुआ कि समस्त विश्व में जो भी कर्म जन्म फल होता है वह क्षयिष्णु है। अनित्य है। कृषि आदि कर्म जन्म फल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है कि अनित्य है। फिर अजर अमर अनन्त अखण्ड चरमात्म पद कैसे प्राप्त हो। इस विचार से वह सौभाग्यशाली श्रीगुरु चरणों की शरण गया और साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके अपनी बात उसने गुरु चरणों के समक्ष रखी। हे भगवान्! अन्य समुद्रों में डूबने पर उनसे उद्धार सम्भव भी है; कारण वहाँ कोई पोत ही आ गया, तो भी पोतवाहक उसे देखकर डूबने वाले का उद्धार कर सकता है किन्तु, संसार समुद्र बहुत ही विलक्षण है। इसमें जन्म मरण की अनवच्छिन्न परंपरा ही जन्म है। सुख और दुःख ही इस संसार समुद्र के महामत्स्य हैं। इससे बचाने की क्षमता किसी में नहीं है। अतः मैं आपकी शरण आया हूँ—और मेरा भी आप को छोड़कर दूसरा कोई सहारा नहीं है। आप कृपा कर मेरा इस संसार समुद्र से उद्धार करें। कहने का तात्पर्य यही है कि बिना गुरु की शरण गये मनमानी उपासना या कर्म से किसी का उद्धार नहीं हो सकता। गुरु ही वह युक्ति बताने में समर्थ है, जिससे कि सरलता से उद्धार हो जाय। इसीलिये गुरु को संसार समुद्र पार करने के लिए कर्णधार बताया गया है।

'गुरुकर्णधारम्' (श्री. भा. म. पु. ११।२०।१७)

कारण इसमें यह है कि यदि कोई ऐसा भयंकर अक्षम्य अपराध वन गया कि भगवान् ही कुपित हो गये तो ऐसी परिस्थिति में विश्व में कोई भी ऐसा नहीं, जो भगवत्कोप से बचा सके। केवल एक मात्र गुरुदेव ही उससे बचा सकते हैं।

'शिवरुष्टे गुरुस्त्राता।'

इसलिए गुरुदेव की ही शरण जाकर उनसे उपदेश लेना चाहिए। भगवान् चन्दन के वृक्ष हैं। चन्दन वृक्ष मलयगिरि पर होते हैं। वहाँ जाकर यदि कोई चन्दन लेना चाहे तो पहले तो वहाँ पहुँचने में ही वड़ी कठिनाई है। इतनी दूर रास्ता तय करना है कि पुरुष वहाँ पहुँचे या न पहुँचे। मार्ग में ही कोई झंझट आ जाय। चोर डाकू शेर व्याघ्र भेड़िया द्वारा तथा अन्न जल की कठिनाई अलग से है ही। कथंचित्, वहाँ पहुँच भी जाय तो उसमें महाविषधर सर्प लिपटे हुए हैं। उन्हीं के द्वारा मृत्यु सम्भावित है। यदि कथंचित् सर्प हटें, तव चन्दन की लकड़ी काटी जाय तो चन्दन प्राप्त हो। सन्तजन गुरुजन वायु हैं। वे मलयानिल की हवा वहाकर चन्दन गन्ध वाली हवा घर बैठे ही ला सकते हैं। न कहीं आना, न कहीं जाना, न कोई तकलीफ। इस तरह भगवान समुद्र हैं। समुद्र का जल कोई स्वयं लेने जाय तो वही सब दिक्कतें सामने हैं। साथ ही समुद्र का जल मिलेगा भी तो खारा मिलेगा। सन्तजन गुरुजन मेघ के जल हैं। जो घर बैठे ही प्राप्त होता है। साथ ही खारा नहीं, किन्तु, मधुर।

'राम सिन्धु सज्जन घन नीरा। चन्दनतरु हरि सन्त समीरा।'

अपने ही मन से किसी देवता का भजन करके प्राणी सिद्ध सुखी हो सकता है। किन्तु, उसमें श्रम वहुत है। सफलता के लिए समय की कोई सीमा नहीं है। गुरु ऐसी युक्ति वताते हैं कि जल्दी से जल्दी मनोरथ पूर्ण हो सकता है। साथ ही पुस्तकों में लिखा मन्त्र देखकर अपने-आप उसे जपने से इस लोक में भी हानि होती है और परलोक में भयंकर खतरा है। तथा अगला जन्म भी विगड़ जाता है।

पुस्तके लिखितान् मन्त्रान् दृष्टवा जपति यो नरः।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः, श्वा चाभि जायते॥

पुस्तक में लिखे मन्त्रों को देखकर विना गुरु से उस मन्त्र की दीक्षा लिए जो जप करता है वह जीवन भर चाण्डाल रहता है और नरक भोगकर दूसरे जन्म में कुत्ता बनता है। फिर उस मन्त्र के जपने का फल कैसा? उससे तो परलोक और विगड़ेगा। इसलिए अनादि गुरु परम्परा प्राप्त मन्त्र की दीक्षा गुरु से लेकर और गुरु से उपासना का सारा विधान समझकर ही उपासना करनी चाहिए। नित्य नियम पूर्वक उपासना का महत्व वहुत है। विघ्न विनायक भगवान् महागणपति, पुत्र वत्सला कल्याणमयी करुणामयी माता उमा, माता लक्ष्मी, भूतभावन भगवान् सदाशिव शंकर. अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायककर्तुम-कर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ भगवान् विष्णु, भगवान् श्रीराम, भगवान् श्री कृष्ण अनन्त तेजोमय प्रकाशमय भुवन भास्कर भगवान् श्री सूर्य की उपासना नित्य प्रातःकाल इनका दर्शन-पूजन स्तोत्र पाठ-स्तुति प्रणामादि सत्य, मृदुभाषण, दृढ़, सदाचारपूर्णव्यवहार नित्य प्रति कुछ न कुछ थोड़ा वहुत जैसा बन पड़े, दान करना, प्रतिकार सामर्थ्य होने पर भी किसी का जहर जैसा कड़वा वचन पी जाना, उसका प्रतिकार कुछ भी न

करना; स्वयं मधुर वोलना, युवावस्था में कामोपभोगशक्ति पूर्ण स्वस्थ शरीर होने पर भी इन्द्रिय दमन, सब जानकारी रहने पर भी किसी से वह बात इस प्रकार सुनना जैसे कि कुछ भी जानकारी न हों, उत्तमोत्तम भोग की सुविधा और शक्ति रहने पर भी उधर अधिक रुचि न होना, उत्साह पूर्ण मन से प्रभु भजन में तत्परता, गुरुजन माता, पिता, आचार्य और ज्ञान वृद्ध वयोवद्ध जनों में श्रद्धा आदि ही भगवद्-भक्ति प्राप्ति और कल्याण के मुख्य साधन हैं—

'दानं दरिद्रस्य विभोः क्षमित्वं, पूनां तपोज्ञानवतां च मौनम् ।
इच्छा निवृत्तिश्च सुखोचितानां दया च भूतेषु दिवं नयन्ति ।।

अपने द्वारा यदि कोई अच्छा काम वन जाय तो उसके लिए मन में अहकांर न होना, जब जैसा सुख दु:ख सम्पत्ति विपत्ति आ पड़े उसे प्रभु का विधान समझकर मन को उद्वेलित न होने देना और यथा लाभ सन्तुष्ट रहना, हृदय में कुटिलता न आने देना, अपने आप को सवसे छोटा समझकर वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु वनकर (अर्थात् वृक्ष ढेला डण्डा, मारने पर भी फल देता है, इसी प्रकार किसी के गाली प्रदान करने पर भी उससे मधुर वोलना) स्वयं अपने मान की भावना न रखते हुए दूसरों का आदर करना, फिर यह सब करते हुए भगवद्भजन सर्वविध कल्याण का साधन है—

'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तिनीयः सदा हरिः ।।'

जो क्षणभंगुर विनश्वर बुद्बुदोपम मूत्र पुरीष भाण्डागार को पाकर उस अजर-अमर अनन्त अखण्ड, अछेद्य, अभेद्य अदाह्य, अक्लेद्य, अशव्द अस्पर्श, अरूप अव्यय प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परव्रह्म को जान लिया तो सत्य की प्राप्ति हो गयी और यदि नहीं जाना तो महान् विनाश है। फिर कव मानव देह मिलेगा, कहा नहीं जा सकता। अकारण करुणकरुणावरुणालय कर्तुम कर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थं ।

"छूछी भरे भरी ढरकावे । जब चाहे तब फेर भरावे ।।"

भगवान् करुणा करके कभी ही मानव देह देते हैं। यथा

कवहुँक करि करुणा नर देही । देत ईश बिनु हेतु सनेही ।।

कारण यह है कि अनन्त कोटि व्रह्माण्डों का, एक-एक व्रह्माण्ड के अनन्तानन्त प्रणियों को एक-एक प्राणियों के अनन्तानन्त जन्मों को एक-एक जन्म के अनन्तानन्त कर्मों को एक-एक कर्म के अनन्तानन्त फलों को जानने वाला तथा जानकर सवको कर्मानुसार फल देने वाला ही ईश्वर होता है। यह भी भगवान् की असीम कृपा है कि वे कर्मों का फल देते हैं। यदि कर्मों का फल देने वाला कोई न हो तो बहुत ही अव्यवस्था फैल जाय। आज इतनी वेकारी की समस्या खड़ी है, क्यों? इसलिये कि कोई कर्म फल दाता नहीं है। आज लाखों करोड़ों की संख्या में शिक्षक बेकार पड़े हैं। इन्जिनीयर वेकार पड़े हैं। डाक्टर बेकार पड़े हैं। शासक सदा ही वेकारी दूर करने के लिए सचेष्ट हैं, किन्तु, आए दिन वेकारी की समस्या मुंह वाए दिन दूनी रात चौगुनी वढ़ती जा रही है। यदि कोई हो, जो शिक्षकों से, इन्जीनियरों से, डाक्टरों से काम लें और उन्हें काम का फल देवे, फिर, बेकारी समस्या तुरन्त समाप्त हो जाय। लोग कहते हैं कि हम अपने कर्म का फल भोगते हैं। इसमें ईश्वर की कैसी कृपा ?

किन्तु; यह कहना ठीक नहीं। कारण, किसी ने अतिशय पुण्य कर्म किया, सत्य भाषण किया, सदाचार पालन किया, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अस्तेय का पालन किया, यज्ञ, तप, दान, इत्यादि किया, किन्तु; वह कर्म तो क्रियमाण काल में विद्यमान रहा। क्रिया समाप्त होते ही समाप्त हो गया, फिर जब वह कर्म नहीं तो फल के साथ उसका सम्बन्ध कैसा ?

क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते:।

बिना भगवान् की आराधना के कर्म का फल कैसे मिलेगा ? क्योंकि कर्म तो करते ही नष्ट हो जाता है ? फिर वह विद्यमान भी नहीं रहता तो अपना फल कैसे अपने आप सम्पादन करेगा ? इसीलिए वेद में श्रद्धा रखने वाले वैदिक लोग कर्म फल देने में भगवान को जमानती समझकर भक्तिभाव से बद्ध परिकर हो, कर्म का सम्पादन करते हैं।

'क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां,
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवम्
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकर: कर्मसुजन: ॥ (महिम्नस्तोत्र)

श्री मदुदयनाचार्य अपने न्याय कुसुमांजलि के पहले स्तवक में नवमी कारिका में कहते हैं—

'चिरध्वस्तं फलायालं न कर्मातिशयं विना ॥ (न्या कु. १।९)

अर्थात् कर्म से एक अपूर्व फल उत्पन्न होता है और वह तबतक विद्यमान रहता है, जबतक कर्म का फल प्राणी भोग नहीं लेता। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी के अनन्तानन्त जन्मों के अनन्तानन्त कर्मों के अपूर्व फल पड़े हुए हैं। उनमें से कुछ ही कर्मजन्म अपूर्व फलोन्मुख होते हैं और ईश्वर की इच्छा के अनुसार ही फलोन्मुख कर्म का भोग करने के लिए विविध योनियाँ मिलती हैं। एक-एक कर्मों के इतने विलक्षण-विलक्षण अनन्तानन्त फल होते हैं कि सभी कर्मों का फलभोग प्राणी के द्वारा अनन्तकाल में भी सम्भव नहीं है। क्योंकि नए-नए कर्म बनते जायेगें। इस प्रकार संचित कर्म कभी घटने का नाम ही नहीं लेगा। क्रियमाण अनवरत होता ही जायेगा। फलोन्मुख कर्म या प्रारब्ध कर्म अपना फल भुगाने के लिये ईश्वर की कृपा के प्राणियों को नानाविध शरीर देगें। महर्षि पतंजलि अपने योग शास्त्र में कहते हैं—

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा:' (पा. यो. सू २।१३)

अर्थात् मूल रहने पर ही उसका परिपाक जाति (जन्म) आयु और भोग के रूप में पैदा होता है। फिर बिना भगवान की कृपा के मानव देह प्राप्ति की आशा कैसे की जाय ? इसीलिये पहले कह आये हैं कि यह क्षणभंगुर भी मानव देह प्राणियों के लिये अति दुर्लभ है। इसीलिये शास्त्र कहते हैं—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥,
(श्री भा. म. पु. ११।२०।१७)

यह मनुष्य देह आद्य प्रथम अर्थात् सभी धर्म अर्थ काम मोक्ष रूप पुरुषार्थों का मूल है। इसी मानव देह से ही प्राणी उच्च, उच्चतर, उच्चतम, हीन, हीनतर हीनतम सभी फलों को प्राप्त कर सकता है। ऐसे सर्व समर्थ साधन को प्राप्त कर भी प्राणी यदि अपना साध्य न प्राप्त कर सका तो वह आत्मघाती है।

बुद्धि का भी सदुपयोग इसी में है कि प्राणी उसके द्वारा उस अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न निखिल

रसामृत मूर्ति आनन्द समुद्र सारसर्वस्व सर्वान्तरात्मा को प्राप्त करलें। अखिल ब्रह्माण्ड में सबसे प्रधान बुद्धि ही है।

मनुष्य अपनी सम्पूर्ण शक्तिहीनता स्वीकार कर सकता है किन्तु बुद्धिहीनता स्वीकार नहीं कर सकता। किसी को यह कहने से कि आपने चश्मा लगा रखा है। क्या आँख से कुछ शिकायत है तो वह स्वीकार करता है कि हाँ आँख से कम दीखने लगा। दूर की दृष्टि क्षीण हो गयी अथवा समीप की चीज नहीं सूझती। यदि कहा जाय कि क्या कान से कम सुनाई देता है ? आपको सुनने में दिक्कत आती है जो आपने कान के पास यन्त्र लगा रखा है वह स्वीकार करता है कि हाँ कान की शक्ति सुनने की कमजोरी भी प्राणी हृदय से स्वीकार करता है। कर्मेन्द्रियों की भी क्षीणता स्वीकार करता है और इन सभी कमजोरियों को स्वीकार करने में किसी को भी रंच मात्र भी हिचिकिचाहट नहीं होती। किन्तु बुद्धि की कमजोरी कोई भी स्वीकार नहीं करता। यदि किसी को कहा जाय कि क्या आपकी बुद्धि कुछ कमजोर हैं अर्थात् आप मूर्ख हैं तो वह पलटकर उत्तर यही देगा कि तुम मूर्ख हो जाहिल हो। अर्थात् सभी अपने आप को महा बुद्धिमान समझते हैं और अपनी बुद्धि से सभी सुख का मार्ग निश्चित कर चलते हैं। इसलिए गायत्री मन्त्र (जो वेद का सार सर्वस्व है) उस की भी महत्ता है कि उसमें बुद्धि की प्रार्थना की गयी है।

केवल वुद्धि ही नहीं किन्तु सद्वुद्धि चाहिए। इसीलिए उपनिषदें कहती हैं कि—

'हिरण्य गर्भंजनयामास पूर्वं सन्ते बुद्धिया शुभया संयुत्मा' (श्वे. उ. ३।४)

जिस परमात्मा ने पहले हिरण्यगर्भ अर्थात् समष्टि वुद्धि शरीर हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया वह हमें भी शुभ वुद्धि दे सद्वुद्धि दें। शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यन्दिन संहिता भी यज्ञ से बुद्धि प्राप्ति की प्रार्थना के पश्चात् भी असन्तुष्ट रहती है। और तब तक सन्तुष्ट नहीं होती जब तक की सुमति (सद्वुद्धि) नहीं कर लेती।

'मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्' (वाः सं १८।११)

ऐसी वुद्धि को प्राप्त कर भी यदि उसे अर्थ प्राप्ति या काम सेवन में ही लगाया जाय तो यह बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। क्योंकि अर्थशास्त्र और कामशास्त्र में अर्थ और काम की शिक्षा पशुओं पक्षियों से सीखने का उपदेश दिया गया है। इसलिये यदि वुद्धि प्राप्त कर भी उसका उपयीग अर्थ काम सेवन में किया तो आत्म प्राप्ति में उसे नहीं लगाया तो यह वुद्धि का व्यय कार्पण्य दोष युक्त माना गया है।

'एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्
यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम ॥' (श्री. भा. म. पु. ११।५६।२२)

बुद्धिमानों की वुद्धि और चतुर लोगों की चतुराई तभी सफल समझना चाहिए जब कि असत्य और मर्त्यइस मानव शरीर से वे परम सत्य अजर अमर अनन्त अखण्ड परब्रह्म तत्व को प्राप्त करलें। यह तो प्रसिद्ध ही है कि मानव शरीर भगवान् की ओर से मिला ही है परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिये किन्तु वहुतेरे महाभागों ने पशु और पक्षी शरीर से भी भगवान को प्राप्त किया है। महात्मा गोस्वामी तुलसीदास ने विशेष रूप से उन लोगों की वन्दना की है—

'अधम शरीर राम जिन पाये'

हनुमान्। जाम्ववान् जटायु भुशुण्डी आदि इनमें मुख्य हैं। गणिका अजामिल आदि ने जीवन पर्यन्त असदाचार में रहकर किन्हीं थोड़े ही सत्कर्मों से भगवान् को प्राप्त कर लिया। इनमें से कितने

तो इस युग के भी नहीं इस चतुर्युगी के भी नहीं इस मन्वन्तर के भी नहीं इस कल्प के भी नहीं किन्तु उनका नाम अजर अमर चला आ रहा है। विभीषण शरणागति के प्रसंग में भगवान् श्री राम ने भक्तराज कपोत (कबूतर) दम्पत्ति का स्मरण किया है। और महर्षि वालमीकि ने उस कपोत का

'श्रूयते हि कपोतेन शत्रु: शरणामागतः।
पूजितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः ॥ (यु. का. १८।२४)

इस श्लोक से स्मरण अपनी स्वर्णिम लेखनी को और भी ओजस्विनी कर दिया। पुराण गण तो इस कपोत दम्पत्ति का गुण वर्णन करते नहीं अघाते। राजनीति के अति प्रतिष्ठित ग्रन्थ पञ्चतन्त्र में काकोलूकीय (काक और उलूक के अमिट विरोध जैसे) प्रकरण में इस कथा को विस्तार से लिखकर ऐसा अन्तर कर दिया कि साधारण किस्से कहानी जानने वाले लोग भी उस दम्पत्ति को जान लें और उसके प्रति कृतज्ञता से उसके नाम पर सिर झुकालें।

मनुष्यों में तीन श्रेणी के लोग होते हैं। (१) उत्तम (२) मध्यम (३) अधम। यद्यपि अर्थ (पैसा) काम और धर्म दोनों का ही साधन है तथापि अधम श्रेणी के लोग धर्म की परवाह नहीं करते और काम (भोग) साधन होने के कारण अर्थ को ही प्रधानता देते हैं। ऐसे लोगों का ध्येय ज्ञेय परमाराध्य अर्थ (पैसा) ही होता है। वे लोग अर्थ के लिए अपने प्राणों तक को न्योछावर कर देते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग अपरिहार्य अवश्योपार्जनीय मानते हुए भी उसके साथ अपनी इज्जत, प्रतिष्ठा मान मर्यादा कीर्ति का ध्यान रखते हैं। उसे गवाँरा कभी भी स्वीकार नहीं करते, किन्तु, उत्तम श्रेणी के लोग अर्थ की परवाह नहीं करते। उनकी धारणा होती है कि प्रारब्धानुसार ही अर्थ भीं प्राप्त होता है। उसके लिए जीवन क्या खपाना ? वे लोग प्रतिष्ठा के लिए कीर्ति के लिए जीवन न्योछावर कर देते हैं। इसी लिए अभियुक्तोक्ति है—

अधमा धनमिच्छन्ति धनमाने च मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानं हि महतां धनम् ॥

ऐसी ही उत्तम लोगों की सजीव कीर्ति विश्व में व्याप्त रहती है। जैसे भगवान श्री राम ने कपोत दम्पत्ति का स्मरण किया है। वैसे ही जगदम्वा, जगज्जननी जानकी के श्री हनुमान जी के मुख से राक्षसियों को दण्ड देने की बात सुनकर एक ऋक्षराज का स्मरण किया है। जगदम्वा जगज्जननी जानकी ने वताया कि एक जंगल में उस जंगल का राजा परम क्रोधी एक सिंह रहता था तथा एक ऋक्ष भी उसी जंगल में रहता था। मनुष्य की बुद्धि में जंगल के राजा सिंह की बात घर कर गयी। उसने सोचा कि अब भालू को गिरा देना ही ठीक होगा। उसने सोये हुए भालू को जोर से गिराने के लिए जोर का धक्का दिया। भालू एक बार गिरा तो सही, किन्तु अभ्यास के कारण शाखा उसके हाथ आ गयी तथा बीच से ही वह ऊपर चढ़ गया। तब सिंह ने भालू से कहा, देख भालू मैंने पहले ही कहा था कि मनुष्य नामक जन्तु वहुत धोखेबाज होता है और यह तुम्हारे साथ भी धोखा करेगा। परिणाम स्वरूप; इसने धोखा

किया है। अब तुम इसे इसके अपराध के दण्डस्वरूप, नीचे गिरा दो। हमारी तुम्हारी बारह वर्ष की शत्रुता है, समाप्त हो जायेगी और मेरे समान ही तुम भी स्वतन्त्ररूप से जंगल में विचरण करना।

भालू ने कहा कि तुम्हारी कूटनीति मानव के ऊपर ही सफल हो सकती है। क्योंकि वह सरल हृदय का होता है। हम तुम्हारी सारी चालबाजी समझते हैं, हमारे ऊपर तुम्हारी कूटनीति सफल न होगी। हमारा अपराध इस मनुष्य ने किया है, हम इसे स्वयं दण्ड दे लेंगें। यदि कोई अपराध करता है तो उसका फल स्वयं उसे ही भोगना पड़ता है। दूसरों को भोगना नहीं पड़ता। इसलिए सबको अपनी मान मर्यादा में रहते हुए अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए। अपराध करने वाले के प्रति भी अपराध नहीं करना चाहिए। सच्चरित्रता वरतनी चाहिए। क्योंकि सज्जन पुरुषों की सच्चरित्रता ही भूषण है।

'न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्। समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥' ॥४३॥

अपराधी अथवा निरपराध के साथ, अपने साथ अच्छा व्यवहार करने वालों या ऐसे महान् अनर्थ करनेवालों (जिनका वध ही कर देना ही उचित है) उनके साथ भी सज्जन पुरुषों को सहृदयता सहानुभूति पूर्ण ही व्यवहार करना चाहिए। अपराध किससे नहीं बन जाता ?

'पापानांवाशुभानां वावधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥ ॥४४॥

लोक हिंसा में ही दिलचस्पी रखनेवाले निरंतर क्रूरता पूर्ण अपराध करनेवाले लोगों का भी अप्रिय नहीं करना चाहिए।

'लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥' (वा. रा. यु. का. ११३।४३-४५)

क्रूरतापूर्वक लोक दमन करने में ही जिन्हें आनन्द आता है, उन दुष्टों का भी निरन्तर अप्रिय करते रहने पर भी अप्रिय नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार क्षमा मूर्ति क्षमा परायणा कल्याणमयी करुणामयी पुत्रवत्सलाजननी पराम्बा श्रीसीता द्वारा उस परम सज्जन भालू का स्मरण किया गया है। अरबों वर्ष से अजर अमर-भालू का नाम है। उसने अपनी मान मर्यादा की रक्षा करते हुए इतना सौजन्य दिखाया था, इसीलिए कहा है—

'मानं हि महतां धनम्।'

उत्तम पुरुषों का धन मान ही है। इसीलिये राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है—

'उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती'
उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती।

धर्म इस शब्द को लेकर नवीन शिक्षित समाज में आज कल अधिक वादविवाद हो रहा है कि धर्म इस शब्द का स्वाभाविक अर्थ क्या है ? हम अंग्रेजी के Relison शब्द को धर्म शब्द का पर्याय मान लें तो संस्कृत धर्म शब्द में नहीं दिखाई देता। दूसरी बात यह है कि इन लोगों में जितना सांसारिक ज्ञान बढ़ता जाता है उतना ही उतना धार्मिक अंश उनके हृदय में सिकुड़ता हुआ चला जाता है। ज्यों-ज्यों यह प्राकृतिक ज्ञान की उन्नति करते जाते हैं, त्यों-त्यों सत्य धर्म या अविनाशी धर्म से दूर होते चले जाते हैं। क्योंकि, प्राकृतिक ज्ञान से आत्मिक ज्ञान पृथक है।

अब यहाँ पर भिन्न-भिन्न शास्त्रों के कुछ धर्म लक्षणों को देते हैं। जैसे-वैशेषिक दर्शनकार महर्षि कणाद का वचन है—

अथातो-धर्मजिज्ञासा ।

अर्थात् अब धर्म को जानने की इच्छा करो।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।

इन लोगों ने धर्म का मुख्य उद्देश्य यही माना है कि जिससे समाज का संचालन ठीक प्रकार से हो अर्थात् अभ्युदय हो और दूसरा, जिससे स्वर्ग सुख की प्राप्ति होवे, बस यही धर्म उपकार है। अंग्रेजों का सातवें दिन किसी धर्म मन्दिर में जाकर दस पांच स्त्री पुरुषों के साथ मिलकर ईश्वर की प्रार्थना करना, यही उनका धर्मरूप या धर्म का मुख्य अनुष्ठान है और ईश्वर तथा परलोक में विश्वास करना यही धर्म का प्रधान अंग है।

किन्तु, हिन्दू शास्त्र के अनुसार हिन्दू के हृदय में प्राकृतिक ज्ञान की वृद्धि के संग-संग, आत्मिक ज्ञान की वृद्धि होती चली जाती है। क्योंकि प्राकृतिक पदार्थ के ज्ञान में और सत्य सनातन धर्म के ज्ञान में कुछ ही भेद है। सत्य सनातन धर्म में जिन प्राकृतिक ज्ञान की उन्नति का नियम बताया गया है, उन नियमों के भीतर सूक्ष्मरूप से सत्य अविनाशी धर्म समाया हुआ है। अतः हिन्दू धर्म अध्यात्म विज्ञान की विमल ज्योति को प्राप्त होकर सदा अपने उदारभावों को प्रकट करता रहता है। जो धारण करता है, उसको धर्म कहते हैं। जिस वस्तु का जो गुण हैं वही उसका धर्म है। आत्मा सत्य सनातन और अविनाशी है। यह सत्य सनातन और अविनाशित्व आत्मा का प्रधान गुण है और यह धर्म ही आत्मा का प्रधान आधार है। वा सहायक है। धर्म आत्मा का नित्य संगी है। इस लोक और परलोक के साथ एक धर्म ही सहायक है। आध्यात्मिक और आधिभौतिक साधन में सामाजिक और पारिवारिक कल्याण में शारीरिक और मानसिक उन्नति में सनातन धर्मावलम्बियों के मन में धर्म ही अङ्ग है। यह धर्म समाज की प्रत्येक रीति पर अपने शासन को पूर्ण रूप से चलाता है। धर्म ही आर्य लोगों के इस लोक और परलोक के सुख का सहायक है और संसार रूप समुद्र से पार होने में जहाज के समान है।

इतिहासों को देखने से जाना गया है कि संसार में धर्म के द्वारा बड़े-बड़े कार्य हुए हैं, होते हैं, और आगे भी होंगे।

भाषा-साहित्य-काव्य-संगीत-शिल्प-आलेख्य-स्थापत्य-आयुर्वेद-कृषिकर्म-देशाचार-कुलाचार-राजनीति-समाजनीति आदि समस्त विषयों को चलानेवाला धर्म ही है। क्योंकि यह नियम सर्वत्र फैला हुआ है। धर्म की उन्नति से ही समाज की उन्नति होती है और धर्म की अवनति से ही समाज की भी अवनति होती है। विज्ञान बतलाता है कि मनुष्य के हृदय में ईश्वरीय ज्ञान को धर्म ही उत्पन्न करता है तथा सांसारिक दुःखों से भस्म होते हुए मनुष्य के हृदय में शांतिरूप जल का सिंचन करता है। धर्म ही समस्त देशों में मनुष्यों को उत्तम नीति से गठित करके उनके हृदय में कुटुम्ब सम्बन्धी अनेक उदार भावों को उत्पन्न करता है और आश्रितों को सच्चरित्रवान बनाकर उनकी उन्नति में सहायक होता है तथा धर्म ही मनुष्यों को दुर्बुद्धि के कारण अनेक अनर्थों का जनक भी होता है। धर्माचार के निमित्त अनेकों देशों में अनेकों प्राणियों के प्राण गए हैं, जिनको याद करके आज भी हृदय कम्पित हो जाते हैं।

आज मनुष्य समाज में जितने धर्म प्रचलित हैं. उन समस्त धर्मों में हिन्दू, बौद्ध, पारसी, ईसाई और मुसलमान प्रधान हैं। इन धर्मों में से कोई न कोई धर्म संसार के प्रत्येक समाज में जन समाज के उपर अपना आधिपत्य जमाए हुए हैं, तथा एक धर्म दूसरे धर्म से पृथक हैं। सदा से मनुष्यों में धर्म विषयक वादविवाद चला आता है। ईश्वर के एक तन्त्रराज्य में एक प्रकार के धर्म के स्थापनार्थ अनेकों लोगों ने प्रयत्न किए हैं। वह भी एक ही बार नहीं, अनेकों बार और आज भी कर रहे हैं। इतना ही नहीं, वरन् उन लोगों ने अपनी मनःकामना पूर्ण करने के लिए कई बार प्राचीन सत्य सनातन धर्म के ज्ञान भण्डार को मनमाना लूटा और फेंका तथा हजारों प्राचीन स्थानों को तोड़-फोड़ कर प्राचीन धर्म का मूलोच्छेद करना चाहा, किन्तु, उनकी समस्त चेष्टायें निष्फल हुई हैं।

प्राचीन समय से युधिष्ठिर, नल, मान्धाता, दिलीप आदि धार्मिक राजाओं और वशिष्ठ, वामदेव आदि महर्षि भी धर्म को जागृत रखने में और उसकी वृद्धि करने में रात-दिन तत्पर रहते थे। जैसे किले में स्थित राज महल की उत्तमता से दृढ़ता से सुरक्षा की जाती है, वैसे ही सनातन धर्मरूपी महल की उपरोक्त राजा महर्षि आदि लोगों से सुरक्षा की जाती थी। परन्तु; यह दशा उलट कर कालवश क्षय होते होते इस समय किसी अतिजीर्ण महल के समान उस धर्म रूप महल की दुर्दशा हो रही है। कहीं-कहीं पुरानी गिरी-पड़ी दीवारें रह गयी हैं। यदि कहो कि वह दीवारें कौन सी हैं ? तो सज्जनों आप सुनिये, हमारे पवित्र ग्रन्थ, जो विद्वता से भरे हुए बचे बचाये कुछ हैं, जिससे आज के समय में भी सारा व्यवस्थित व्यवहार और नीति-नियम निबन्धन आदि चले आते हैं। हमारे प्राचीन पुस्तकों का ग्रन्थ भण्डार इतना बलिष्ठ था कि औरंगजेब बादशाह ने हमारे ग्रन्थ भण्डार को जलाने की आज्ञा दी तो छः मांस तक बराबर ग्रन्थों के लगातार जलते रहने पर भी वह पूर्णतया नष्ट नहीं हुआ। अन्त में जो ग्रन्थ बच गए; उनका बहुमूल्यपना इतना है कि वह जगत् भर के अन्य मनुष्यों के ग्रन्थों को और विधाओं को अब भी निम्न मस्तिष्क कराते हैं। नवीन फिलासफर वैज्ञानिक कवि इतिहासविद् आदि भी उन ग्रन्थों में से एक एक पंक्ति को पढ़कर चकित एवं नतमस्तक हो जाते हैं और कहते हैं कि हमारी बुद्धि काम नहीं देती। अस्तु, यह जो हीन दशा हुई है यह हमारे धर्म का बुढ़ापा है। जैसे मनुष्य का बाल्यकाल कुमार काल, यौवन काल, प्रौढ़ावस्था और वृद्धत्व का काल ये क्रमिक अवस्थाएँ हैं, वैसे ही धर्म के बारे में भी समझना चाहिए। जिस पर कलियुग महाराज की अमलदारी जिस प्रकार बुढ़ापे में मनुष्य की गर्दन काँपने लगती है, वैसे ही इस धर्म की भी गर्दन काँपने लगती है। अर्थात् यदि कोई हमसे पूछे कि ब्रह्मचर्य कैसी, क्या

वस्तु है ? तो उसे सूचित करने के लिए गर्दन हिलने लगती है। सत्य नहीं, धैर्य नहीं, क्षमा नहीं, अहिंसा नहीं, इन सब ही शब्दों के साथ गर्दन हिलाई जाती है, यही धर्म के बुढ़ापे के लक्षण हैं। परन्तु, ऐसी दशा हो जाने के वास्तविक कौन कौन कारण हैं। यद्यपि उन सब कारणों के वर्णन में बहुत समय लगेगा, परन्तु, सबसे बड़ा कारण संस्कृत भाषा की अवनति है। संस्कृत ही हमारे धर्मग्रन्थों और अनेकों शास्त्रों की उस समय की भाषा है तथा विश्वभर की सभी भाषायें इसके ही शब्दों का उच्चारण विगड़ते विगड़ते बन गई हैं। ऐसा कहना कोई अनुचित बात नहीं है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द कहते हैं उनसे इस बात का निश्चय हो जायगा।

संस्कृत	लेटिन	अंग्रेजी	पर्शियन	जर्मन	ग्रीक
मातृ	मेटर	मदर	मादर	मातेर्	मातेर्
पितृ	पेटर	फादर	पिदर्	पातेर्	पिटर
सुवन्	सन्	सन्	——	——	——
दुहितृ	——	डाक्टर	दु:खतर	——	——

इस प्रकार और भी अनेकों शब्दों की समता दिखाई जा सकती है। परन्तु; उतना अवकाश न होने के कारण आगे चलते हैं।

ऐसे सूक्ष्म रीति से देखने पर जगत भर की सकल भाषाओं की जननी नि.सन्देह यह संस्कृत ही है। मूल स्थान भारत वर्ष से उसका प्रचार जैसे-जैसे दूर देशों में होता गया वैसे-वैसे उसका अपभ्रंश होकर उसके द्वारा और लोगों की भाषा बनती गयी। यह दशा होते हुए भी जिनको इस संस्कृत की गन्ध भी नहीं मिली है, वह इसको डैड लविंग (मृत भाषा) और मूर्ख लोगों की भाषा कहते हैं और उनमें ऐसे ही विचार भरे होंगे, इस प्रकार कहकर तिरस्कार करते हैं। अभी अभी की बात है इजिप्त स्वतंत्र होते ही वहाँ की मूल हीब्रू भाषा को जानने वाले कुछ गिनती के ही लोग थे परन्तु इन्होंने एक सूत्र में संगठित होकर मृत हिब्रू भाषा को सजीवित एवं पल्लवित किया। आज २५-२५ साल होते हुए भारतवर्ष की भाषा के सम्बन्ध में निर्णय नहीं हो पाया है। इनमें स्वतन्त्र प्रतिभा अभय और आत्मविश्वास विचार आदि का सर्वथा अभाव है।

आंग्लानां तु को राजा कतिबारं व्यमूत्रयत्।
इति सर्वं विजानाति न जानाति स्वकं गृहम्॥

अंग्रेजों का कौन-सा राजा कितनी वार लघुशंका करता था। उन सभी वातों का इनको ख्याल है, परन्तु अपना और अपने देश का मूलाधार क्या है, वही नहीं जानते। संस्कृत सीखना मानों, भीख माँगने की विद्या सीखना है। वह तो मरियल और भीख माँगने के लिए पढ़नी चाहिए। हमको उससे क्या लाभ ? ऐसा, वृथा वकवाद करते हैं। परन्तु, रत्न के मोल को कुंजणा क्या जाने ? मित्रों ? केवल शब्दों की ही समता नहीं है किन्तु अनेकों नए शास्त्र भी इसी भाषा में लिखे हुए मिलते हैं। जैसे आयुर्वेद-ज्योतिष-विज्ञान तर्कशास्त्र मोक्षशास्त्र सिविल इंजिनीयरिंग मेकेनिकल इजीनीयरिंग विद्युत ऐयर एरोप्लेन आदि अनेक विध विधाओं का निर्देश और निर्माण प्रक्रिया से भारतीय ग्रन्थों में निहित है। यह बात ग्रन्थों को पढ़ने से और व्यवहार से समझ में आजायगा। सूर्य की उष्णता से पानी का भाप बनकर उसके मेघ होकर फिर वर्षा होती है।

यह खोज नवीन नहीं है, परन्तु उपनिषदों में इस वात को स्पष्ट उल्लेख किया हुआ है।

'आदित्याज्जायते वृष्टि वृंष्टेरन्नं ततः प्रजाः।

जिस विद्युतशास्त्र ने आज जगत् को चकाचौंधकर डाला है, उसका प्रचार पहले हमारी और ही था। यह वात एक छोटे से दृष्टान्त से आप समझ सकेंगे। जव वरसात आती है, तव वादलों में विजली चमकने लगती है। तव साधारण दासी भी आंगन में पड़े हुए कांसी आदि धातुओं के पात्रों को शीघ्रता से उठाकर घर में ले जाने की वात को समझती हुयी हमारे घर की दासियाँ भी विजली धातु में गिरकर घुस जाती है, वह जानती है। तात्पर्य, यह है कि नई चलायी हुयी मालूम होने वाली अनेक विद्यायें पहले हमारे पास थीं, परन्तु अव पूर्वोक्त कारणों से हमारे ग्रन्थों का और प्रक्रियाविद व्यक्तियों के नाश होने के कारण यह सब स्वप्न समान दिखता है।

जैसे ग्रन्थों की और संस्कृत भाषा की ऐसी अधोगति हो गयी, वैसे ही हमारी गुरुशिष्य प्रणाली भी विगड़ गयी है। आजकल अधिक तो क्या, वहुत से गुरु नामधारी भी इस वात को नहीं जानते कि सन्ध्या प्राणायाम आदि शास्त्रानुकूल किस रीति से करनी चाहिए। वस, केवल नाक कान को हाथ लगाया, प्राणायाम हो गया। जव गुरुओं की यह दशा है, तो शिष्यों का कहना ही क्या ? हाँ, कभी-कभी सच्चे गुरू मिल भी जाते हैं, परन्तु दिनों-दिन गृहस्थों की श्रद्धा घटती जाने के कारण उनसे भी दोनों को कुछ भी लाभ नहीं पहुँचता। इस पर एक वात याद आती है कि एक दिन त्योहार उत्सव आदि के समय पर किसी वेश्या के आने के विषय में तार आया, तो उसके लिए कोई गाड़ी भेजता है, तो कोई सेवक भेजता है और कोई आने पर अंगूर, अंजीर, अनार, सन्तरे, केला, आम, पकवान आदि की तश्तरियें नजर करके वार-वार प्रश्न किया जाता है कि सरकार आपकी तवियत कैसी है ? और उनके ही पासी कहीं यदि गुरुवर्य के आने का तार या पत्र आये तो उनको किसी घूड़साल गौशालां या कवूतर खाने में ठहरा देते हैं और कहीं से आए हुए सड़े पड़े फल अर्पण कर देते हैं। यदि गुरुजी ने पूछा तो कह दिया महाराज आप तो परमहंस हैं, आपको भला बुरा क्या ? जहाँ ऐसी दशा है, वहाँ धर्म की उन्नति की क्या आशा ?

प्राचीन शास्त्रों को देखने से विदित होता है कि सत्ययुग त्रेता और द्वापर में जो अकृत्रिम सनातन धर्म संसार में था। उस समय ब्रह्मोपासना और योगाभ्यास सब कर्मों में प्रधान था। फिर इस कलियुग में मनुष्यों के आध्यात्मिक अधः पतन के साथ-साथ कृत्रिम ज्ञान की प्रबलता के वश कृत्रिम धर्म प्रबल होने लगा। जो धर्म किसी मनुष्य के द्वारा प्रचारित होता है उसका नाम कृत्रिम धर्म है। इस कृत्रिम धर्म के अत्याचार से आजकल अकृत्रिम सनातन धर्म ढका हुआ सा हो गया है।

ऐसी दशा होते हुए भी हम हिन्दुओं की स्त्रियों में अब भी धर्म का अंश अधिक है। यद्यपि आज कल के नव शिक्षित लोग हिन्दुओं के घरों को लक्ष्मी स्वरूपिणी ऐसी स्त्रियों को अज्ञान में पड़ी हुई समझते हैं, परन्तु, सनातन धर्म के मत में यह अज्ञान नहीं है। उदाहरण देखिये ? एक हिन्दू नारी प्रातःकाल के समय उठकर पति की सेवा करके पति की आज्ञानुसार गङ्गा तट पर स्नान करने को जाती है। स्नान के अनन्तर श्री गङ्गामैया का पूजन करके सिन्दूर अगर कुंकुम को गङ्गाजी का प्रसाद जानकर अपने भाल प्रदेश में लगाकर उसको सौभाग्य का चिन्ह समझती है।

तदनन्तर पीपल के वृक्ष में सिन्दूर की विन्दी लगाकर, आम के वृक्ष पर टीका लगाती हैं। जहाँ चौराहा होता है, वहाँ सिन्दूर चढ़ाती हैं। तदनन्तर अपने घर आकर कौलो को और दीपक रखनेके स्थान पर तथा पलहण्डी पर टीका लगाती हैं। जरा विचार कर देखो, इन वस्तुओं पर टीका लगाने का क्या प्रयोजन ? सनातन धर्म का रहस्य है कि ब्रह्म सर्वत्र समभाव से प्राप्त है। यही स्त्रियों के उस भाव को दिखाया गया है। इतना ही नहीं, किन्तु, सिन्दूर अगर कुंकुम यह स्वामी के विद्यमान होने के चिन्ह हैं। जिस प्रकार जगत् भर का स्वामी इन सब काष्ठ पाषाण आदि वस्तुओं में ओत-प्रोत भर रहा है। देखें यथा—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म।
ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥
तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्।

इत्यादि श्रुतियों के मंथन द्वारा निष्कासित अर्थ को जानते हुए या नहीं जानते हुए भी हिन्दू स्त्रियाँ भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर कुंकुम का टीका लगाकर प्रकट करती हैं।

ऐसा उपदेश और तदनुसार आचरण इन दोनों पर अव्वल केवल सनातन धर्म में ही देखा गया है। इस कारण यह अन्य सब धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। सनातन धर्म में वृक्ष पशु आदि की भी पूजा कही गई है। इसको बहुत से भिन्न धर्मी मूर्खता बताते हैं, परन्तु, ऐसा कहने वालों ने सनातन धर्म का रहस्य कुछ भी नहीं समझा है। वृक्ष पशु आदि की पूजा करना मूर्खता नहीं है, किन्तु सनातन धर्म का महत्व दिखलाने वाला ज्वलन्त उदाहरण है। क्योंकि देखो, दूध-दही-माखन-मलाई आदि से बालक से लेकर वृद्ध पर्यन्त का अत्यन्त उपकार करने वाली परम प्रिय गौ की पूजा करने के लिए जैसी सनातन धर्म में आज्ञा है, वैसे ही प्राण घातक परम शत्रु सर्पराज की भी श्रावणा शुक्ला पंचमी को पूजा करने की आज्ञा दी है।

इस उच्च तत्व का केवल उपदेश ही नहीं किया है, किन्तु तदनुसार प्रत्यक्ष आचरण भी सनातन धर्म में दिखाया है। ऐसे उदार उपदेश और आचरण का फोटो क्या और किसी धर्म में ढूढ़ने से भी मिल सकता है ? कदापि नहीं। इससे सनातन धर्म की योग्यता व्यापकता और महत्ता को सब सहज में ही समझ सकते हैं। ईश्वर सर्वत्र व्यापक हैं, इसका यथार्थ विचार जिसमें है, ऐसा एक सनातन धर्म ही है। इसको अन्य धर्मी लोग तथा हममें भी जो सुधारक हैं, वे चाहे जो कुछ कहें, परन्तु ईश्वरीय यथार्थ व्यापकता के रहस्य को एक सनातन धर्मियों ने ही यथार्थतया समझा है।

इतनी विस्तृत विवेचना के वाद धर्म का द्वितीय लक्षण क्षमा पर आगे अपना विचार करेंगे। क्षमा का लक्षण वृहस्पति स्मृति में इस प्रकार कहा है—

बाह्याऽभ्यन्तरे चैव दुःखे चोत्पत्तिके क्वचित्।
न कुप्यन्ति न वा हन्ति सा क्षमा परिकीर्त्तिता ॥

समर्थ होते हुए भी जो क्रोध करने वाले और मारने वाले को भी नहीं मारता और न उस पर क्रोध करता, वह मनुष्य क्षमाशील है क्योंकि—

"शक्तानां भूषणं क्षमा"

'सामर्थ्य वाले का आभूषण ही क्षमा है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण महाराणी द्रौपदी हैं।

'यदामृधे कौरव सृञ्जयानां
वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु।
वृकोदराविद्धगदाभि मर्ष
भग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥१३॥

जब महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डव पक्ष के वहुतर योद्धाओं ने वीरगति प्राप्त करली थी और भीमसेन ने अपनी गदा से दुर्योधन की टाँग तोड़ डाला उसी समय ब्राह्मण कुमार अश्वत्थामा अपने स्वामी दुर्योधन के पास आया और वीर केशरी दुर्योधन को उस दशा में देखकर कहा राजन्! मैंने तुमसे कर्णादि योद्धाओं के सन्मुख कहा था कि तुम मुझे सेनापति वनाओ, मैं तुम्हारे शत्रुओं का संहार करूंगा किन्तु तुम कर्ण के वल पर फूले हुए थे, तुमने मेरा अपमान किया। हे राजन् मुझे अपने बूढ़े पिता की मृत्यु याद आती है। उसी समय उसके हृदय में पाण्डवों को सपरिवार यमालय में भेजने का विचार उठता है। हाय! जो महापुरुष मुझ पुत्र की झूठी मृत्यु के संवाद को श्रवण कर अस्त्र शस्त्रों को त्याग समाधिस्थ होकर अपने आत्मा को परमात्मा में लय कर रहे थे, ऐसे समय में उनका सिर दुष्ट धृष्टद्युम्न ने कर्ण और अर्जुन के सामने केश पकड़कर काट लिया। हे राजन्! एक द्रौपदी के केशाकर्षण का परिणाम यह घोर संग्राम है। परन्तु, यह बूढ़े ब्राह्मण के केशाकर्षण का परिणाम यह होगा कि अश्वत्थामा के हाथों

प्राचीन शास्त्रों को देखने से विदित होता है कि सत्ययुग त्रेता और द्वापर में जो अकृत्रिम सनातन धर्म संसार में था। उस समय ब्रह्मोपासना और योगाभ्यास सव कर्मों में प्रधान था। फिर इस कलियुग में मनुष्यों के आध्यात्मिक अधः पतन के साथ-साथ कृत्रिम ज्ञान की प्रवलता के वश कृत्रिम धर्म प्रबल होने लगा। जो धर्म किसी मनुष्य के द्वारा प्रचारित होता है उसका नाम कृत्रिम धर्म है। इस कृत्रिम धर्म के अत्याचार से आजकल अकृत्रिम सनातन धर्म ढका हुआ सा हो गया है।

ऐसी दशा होते हुए भी हम हिन्दुओं की स्त्रियों में अब भी धर्म का अंश अधिक है। यद्यपि आज कल के नव शिक्षित लोग हिन्दुओं के घरों को लक्ष्मी स्वरूपिणी ऐसी स्त्रियों को अज्ञान में पड़ी हुई समझते हैं, परन्तु, सनातन धर्म के मत में यह अज्ञान नहीं है। उदाहरण देखिये ? एक हिन्दू नारी प्रातःकाल के समय उठकर पति की सेवा करके पति की आज्ञानुसार गङ्गा तट पर स्नान करने को जाती है। स्नान के अनन्तर श्री गङ्गामैया का पूजन करके सिन्दूर अगर कुंकुम को गङ्गाजी का प्रसाद जानकर अपने भाल प्रदेश में लगाकर उसको सौभाग्य का चिन्ह समझती है।

तदनन्तर पीपल के वृक्ष में सिन्दूर की विन्दी लगाकर, आम के वृक्ष पर टीका लगाती हैं। जहाँ चौराहा होता है, वहाँ सिन्दूर चढ़ाती हैं। तदनन्तर अपने घर आकर कौलो को और दीपक रखनेके स्थान पर तथा पलहण्डी पर टीका लगाती हैं। जरा विचार कर देखो, इन वस्तुओं पर टीका लगाने का क्या प्रयोजन ? सनातन धर्म का रहस्य है कि ब्रह्म सर्वत्र समभाव से प्राप्त है। यही स्त्रियों के उस भाव को दिखाया गया है। इतना हो नहीं, किन्तु, सिन्दूर अगर कुंकुम यह स्वामो के विद्यमान होने के चिन्ह हैं। जिस प्रकार जगत् भर का स्वामी इन सव काष्ठ पाषाण आदि वस्तुओं में ओत-प्रोत भर रहा है। देखें यथा—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म।
ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥
तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्।

इत्यादि श्रुतियों के मंथन द्वारा निष्कासित अर्थ को जानते हुए या नहीं जानते हुए भी हिन्दू स्त्रियाँ भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर कुंकुम का टीका लगाकर प्रकट करती हैं।

ऐसा उपदेश और तदनुसार आचरण इन दोनों पर अव्वल केवल सनातन धर्म में ही देखा गया है। इस कारण यह अन्य सव धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। सनातन धर्म में वृक्ष पशु आदि की भी पूजा कही गई है। इसको वहुत से भिन्न धर्मी मूर्खता वताते हैं, परन्तु, ऐसा कहने वालों ने सनातन धर्म का रहस्य कुछ भी नहीं समझा है। वृक्ष पशु आदि की पूजा करना मूर्खता नहीं है, किन्तु सनातन धर्म का महत्व दिखलाने वाला ज्वलन्त उदाहरण है। क्योंकि देखो, दूध-दही-माखन-मलाई आदि से बालक से लेकर वृद्ध पर्यन्त का अत्यन्त उपकार करने वाली परम प्रिय गौ की पूजा करने के लिए जैसी सनातन धर्म में आज्ञा है, वैसे ही प्राण घातक परम शत्रु सर्पराज की भी श्रावणा शुक्ला पंचमी को पूजा करने की आज्ञा दी है।

इस उच्च तत्व का केवल उपदेश ही नहीं किया है, किन्तु तदनुसार प्रत्यक्ष आचरण भी सनातन धर्म में दिखाया है। ऐसे उदार उपदेश और आचरण का फोटो क्या और किसी धर्म में ढूढ़ने से भी मिल सकता है? कदापि नहीं। इससे सनातन धर्म की योग्यता व्यापकता और महत्ता को सब सहज में ही समझ सकते हैं। ईश्वर सर्वत्र व्यापक हैं, इसका यथार्थ विचार जिसमें है, ऐसा एक सनातन धर्म ही है। इसको अन्य धर्मी लोग तथा हममें भी जो सुधारक हैं, वे चाहे जो कुछ कहें, परन्तु ईश्वरीय यथार्थ व्यापकता के रहस्य को एक सनातन र्धामयों ने ही यथार्थतया समझा है।

इतनी विस्तृत विवेचना के वाद धर्म का द्वितीय लक्षण क्षमा पर आगे अपना विचार करेंगे। क्षमा का लक्षण वृहस्पति स्मृति में इस प्रकार कहा है—

बाह्याऽभ्यन्तरे चैव दुःखे चोत्पत्तिके क्वचित्।
न कुप्यन्ति न वा हन्ति सा क्षमा परिकीर्त्तिता॥

समर्थ होते हुए भी जो क्रोध करने वाले और मारने वाले को भी नहीं मारता और न उस पर क्रोध करता, वह मनुष्य क्षमाशील है क्योंकि—

"शक्तानां भूषणं क्षमा"

'सामर्थ्य वाले का आभूषण ही क्षमा है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण महारानी द्रौपदी हैं।

'यदामृधे कौरव सृञ्जयानां
वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु।
वृकोदराविद्धगदाभि मर्ष
भग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥१३॥

जव महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डव पक्ष के बहुतर योद्धाओं ने वीरगति प्राप्त करली थी और भीमसेन ने अपनी गदा से दुर्योधन की टाँग तोड़ डाला उसी समय ब्राह्मण कुमार अश्वत्यामा अपने स्वामी दुर्योधन के पास आया और वीर केशरी दुर्योधन को उस दशा में देखकर कहा राजन्! मैंने तुमसे कर्णादि योद्धाओं के सन्मुख कहा था कि तुम मुझे सेनापति बनाओ, मैं तुम्हारे शत्रुओं का संहार करूँगा किन्तु तुम कर्ण के बल पर फूले हुए थे, तुमने मेरा अपमान किया। हे राजन् मुझे अपने बूढ़े पिता की मृत्यु याद आती है। उसी समय उसके हृदय में पाण्डवों को सपरिवार यमालय में भेजने का विचार उठता है। हाय! जो महापुरुष मुझ पुत्र की झूठी मृत्यु के संवाद को श्रवण कर अस्त्र शस्त्रों को त्याग समाधिस्थ होकर अपने आत्मा को परमात्मा में लय कर रहे थे, ऐसे समय में उनका सिर दुष्ट धृष्टद्युम्न ने कर्ण और अर्जुन के सामने केश पकड़कर काट लिया। हे राजन्! एक द्रौपदी के केशाकर्षण का परिणाम यह घोर संग्राम है। परन्तु, यह बूढ़े ब्राह्मण के केशाकर्षण का परिणाम यह होगा कि अश्वत्थामा के हाथों

से पाण्डव ही नहीं वरन् उनका सारा परिवार यम यातना भोगेगा। राजन् अब मैं जाता हूँ। अपने पिता का बदला लूँगा। अश्वत्थामा ने पाण्डवों के शिविर में जाकर रात्रि में सोते हुए पाण्डवों के पक्ष में बचे हुए समस्त योद्धाओं को भगवान शंकर के दिए हुए खड्ग से मार डाला और द्रोपदी के सोते हुए पाँचों पुत्रों के शिर जो युधिष्ठिरादि पाँचों भाईयों से उत्पन्न हुए थे, उनको काट लिए।

शिविर में हाहाकार मच गया। इधर द्रोपदी ने अपने पाँचों पुत्रों के शिरोहीन शरीरों को देख कर शोक से कातर होकर उच्च स्वर से विलाप करने लगी। तब अर्जुन ने धैर्य धारण कर कहा कि मैं शीघ्र ही तेज तलवार से अश्वत्थामा का शिर काट लाता हूँ। तूँ उसके ऊपर बैठकर स्नान करती हुयी अपने पुत्र शोक को दूर करना। क्षत्रिय वीर धनंजय इस प्रकार शोकाकुल द्रौपदी को समझाकर अश्वत्थामा को पकड़ने के लिए रथ पर सवार हो गया, उधर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अर्जुन को पीछे आता हुआ देखकर घबड़ाया। उसने देखा कि अर्जुन से छुटकारा मिलना कठिन है। कहा है कि "काल के संग गोरा बैठे रंग न बदले तो खसलस तो आयेगी ही।" आज दुर्योधन के पक्ष में अश्वत्थामा रहा है, दुर्योधन मर रहा है, आँखों से देखता है कि विजयमाल पाण्डवों पर गिर रही है, तो भी दुर्योधन के हित की चिन्ता करता हुआ अश्वत्थामा आज पाण्डव के पुत्रों का विनाश करके भाग रहा है। तब तो बुद्धिभ्रंश के कारण उसने अपने ब्रह्मास्त्र को व्यर्थ में उठाया और कृष्ण सहित अर्जुन पर छोड़ दिया वह भयंकर अस्त्र अपने तेज से दशो दिशाओं को कपाता हुआ आकाश की ओर उठा, अर्जुन इसको देखकर व्याकुलता से भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र से कहने लगे कि हे महावाहो। हे देव। यह तो अग्नि का समूह चारों ओर से दशो दिशाओं को जलाता हुआ चला आता है, प्रभो! यह क्या है? और कहाँ से आ रहा है। भगवान् हास्य पूर्वक बोले हे सखे! यह अश्वत्थामा का चलाया हुआ ब्रह्मास्त्र है। यह एक ही ब्राह्मण कुमार का छोड़ा हुआ तीर त्रिलोकी को जलाकर खाक कर डालेगा।

अश्वथामा इसका निवारण करना नहीं जानता, उसने अपनी रक्षा के लिए तुमसे डरकर इस घोर अस्त्र का प्रयोग किया है। तुम अपने ब्रह्मास्त्र से इसे रोको शीघ्रता करो नहीं तो संसार का बड़ा अमंगल होगा। यह सुनते ही अर्जुन रथ से उतरकर आचमन प्राणायाम करके अपना चमकता हुआ अस्त्र माथे से निकला। इस पर एक कथानक याद आता है कि एक शिकारी जंगल में शिकार के लिए गया वहाँ पर उसे एक कबूतर और कबूतरी का जोड़ा घोसले में बैठा देखा कि यहाँ तो बहुत शिकार मिल जायेंगे। अब उसने अपना तीर सम्भाला और निशाना बाँध लिया इतने में कबूतर की निगाह ऊपर की ओर गयी और देखा कि बाज चक्कर लगा रहा है। जब उसने नीचे देखा तो शिकारी तीर सम्भाले हुए खड़ा था। अब विचारे कबूतर कबूतरी बड़ी ही विपत्ति में फंस गये। उन्होंने भगवान् की प्रार्थना प्रारम्भ की। उस पर कवि नथ्थासिंह का एक कवित्त याद आता है—

दुनियाँ से जा रहा हूँ रोको ए दुनियाँ दारो।
यम खेंचता है मुझको पकड़ो हमें तो प्यारो॥
धनवान् था मैं मुझको न निर्धन करके मारो।
नोटों के बीस बण्डल मेरी छाती पै डारो॥

तुम जानते थे मुझको मैं था कपड़ों के मिल मालिक।
इस तन पै है तीन कपड़े ये तो अब ना उतारो ॥
एक मिन्ट भी अकेला मुझको न छोड़ते थे।
अब जा रहा अकेला आओ साथ रिश्तेदारों ॥
कहते थे जो हमको तेरे साथ ही मरेंगे।
अब कहाँ मर गए सारे आवाज दे पुकारो ॥
देखे झमेले मेले एक साथ खाये खेले।
इस यात्रा में मुझसे फिर क्यों भागते हो न्यारो ॥
कानों में उसके जाके, नत्थासिंह यूँ बोला।
गज ने जिसे पुकारा तुम भी उसे पुकारो ॥

उन बच्चों समेत कबूतर कबूतरी ने भगवान् की प्रार्थना प्रारम्भ की कि हे प्रभु ! आप ही हमें इस विपत्ति से बचा सकते हैं। ईश्वर ने प्रार्थना सुनी। अचानक एक सांप ने आकर शिकारी के पाँव को काट लिया और उसके हाथ से तीर छूट कर बाज को जाकर लगा और दोनों मर गए। कबूतर के कुटुम्ब की भगवान् ने रक्षा की। इस प्रकार ईश्वर की कृपा से उसके दोनों शत्रुओं का नाश हुआ। अर्जुन ने उसी प्रकार माथे से निकाले हुए अस्त्र का पूजन करके ज्यों ही धनुष पर चढ़ाकर प्रयोग किया तो परस्पर दोनों ब्रह्मास्त्र टकरा गए जिससे दशों दिशायें चमक उठीं और दोनों अस्त्र आकाश में प्रलय काल के सूर्य और अग्नि के समान फैल गए। भगवान् ने अर्जुन को कहा कि तुम दोनों अस्त्रों को लौटाओ। नहीं तो यह दोनों अस्त्र त्रिलोकी को भस्म कर देंगे। भगवान् की आज्ञानुसार अर्जुन ने दोनों अस्त्रों का निवारण किया और अश्वत्थामा को पकड़कर अपने रथ के दण्डे से बाँध दिया। तब भगवान् ने अर्जुन से कहा कि हे मित्र ! यह ब्राह्मणों में अधम है। अरे इसने रात में सोते हुए बालकों के सिर काटकर महान् अनर्थ किया है। इसको जिन्दा मत छोड़ो, यह वध करने के योग्य है और शास्त्र की भी आज्ञा है कि 'आततायिनं हन्यात्।' यह आततायी है। इसको मारना ही ठीक है और तुमने द्रोपदी के आगे भी इस पापात्मा का सिर काटने की प्रतिज्ञा की है अब देर क्यों करते हो ? इसने हमारा ही अनिष्ट नहीं किया है, किन्तु अपने स्वामी का भी अनिष्ट किया है।

[सज्जनों ! यह धर्म संकट है, यह धार्मिक परीक्षा का समय है। अर्जुन इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। उसके कानों में 'अवध्योऽयं ब्राह्मणः।' यह शास्त्र का वचन गूँजने लगा। उसने अश्वत्थामा का सिर नहीं काटा किन्तु वह सीधा उसको पुत्र शोकाकुला द्रौपदी के पास ले गया। रस्सी में बँधे हुए ब्राह्मण को नीचामुख आते देखकर साधुशीला द्रौपदी का हृदय भर गया। गला रुद्ध हो गया। उसके नेत्रों से अश्रु धाराओं का प्रवाह प्रवाहित होने लगा। वह एक दम आसन से उठी और अश्वत्थामा को प्रणाम करके घबड़ाती हुयी अर्जुन से कहने लगी।

मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ।
स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ।।
मा रोदितु ह्यस्य जननी गौतमी पतिदेवता ।
यथाहं मृतवत्साऽऽर्त्ता रोदिम्यश्रुमुखीमुहुः ।।

हे नाथ ! इनको छोड़ दो, छोड़ दो । यह ब्राह्मण हैं, हमारे परम गुरु हैं । जिनसे तुमने धनुर्विद्या सीखी है, यह वही महात्मा द्रोणाचार्य ही पुत्र रूप में खड़े हैं । स्वामिन् ! आप की गुरु पत्नी अभी जीवित हैं । उस अनाथ पतिव्रता का इस संसार में एक यही पुत्र सहारा है । जैसे पुत्रों के शोक से मेरा कलेजा फटा जाता है जैसे मैं बार-बार आँसू भर-भर रोती हूँ, इस प्रकार इसकी माता भी वृद्धा गौतमी अपने पुत्र के शोक से न रोवें । द्रौपदी को इस प्रकार अश्वत्थामा के ऊपर दया करते देख वहाँ पर उपस्थित युधिष्ठिरादि सब सज्जनों ने उसकी प्रशंसा की ।

इस प्रकार क्षमा धर्म का सेवन करनेवाले का कोई शत्रु नहीं होता ! क्षमाशील मनुष्य की इस लोक में कीर्ति होती है और परलोक में वह मुक्ति का भागी होता है ।

हमारे इस दीर्घ प्रवचन का तात्पर्य यह है कि सत्य सनातन धर्म के नियमों का पालन करने वाला मनुष्य संसार बन्धन से छूट जाता है । आप को भी चाहिए कि वन्धन से छूटने के लिए क्षमा और धैर्य को धारण करते हुए भगवन्नाम का निरन्तर चिन्तन करते रहें ।

"नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं,
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं,
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ।।

सज्जनों ! आज विश्वास रूपी कदम्ब के वृक्ष के नीचे सनातन धर्मरूपी श्री कृष्णचन्द्र अपनी प्रेमरूप मुरली का मधुर वादन कर रहे हैं । उसकी मधुर ध्वनि को सुनकर सभासदरूपी गोपीजन भी अपने हाथ में विवेक का डफ लेकर और उपासना की बांसुरी बजाकर भक्ति रस में निमग्न होते हुए मोक्षधर्म के आद्य सोपान स्वरूप अत्यन्त दुर्लभ, परन्तु अत्यन्त पुण्यपुंज के द्वारा सुलभ संसार सागर को पार करने के हेतु नौका स्वरूप में सन्निष्ठ सद्गुरु स्वरूपी नौका को प्राप्त करके भी जो मनुष्य इस भवसागर को पार होने का प्रयत्न नहीं करता, वह आत्मघाती माना गया है ।

जिनको आज कल की नवीन शिक्षा यानी अंग्रेजी शिक्षा ही मिली है, वैसे कुछ लोगों की अपने धर्म पर से श्रद्धा कुछ-कुछ कम होने लगी है । नयी विद्या के प्रभाव से प्रकट होनेवाले रेल तार आदि बाहरी भौतिक चमत्कारों से उनके नेत्र चौंधाकर उनको स्नान संध्या शिव पूजन आदि अपने धर्म की रीति में पोंच और मूढ़ता के काम प्रतीत होने लगे हैं ।

तरुण वालक के कोमल मानस के ऊपर ऐसे ढंग के संस्कार जमना, उनके इह लोक और परलोक के कल्याण का अत्यन्त वाधक है। इस कारण आज शिव पूजन पर ही विचार करना उचित प्रतीत होता है। हम जिन शिवजी का पूजन करते हैं, वह प्रलयंकर शंकर का स्वरूप वास्तव में कैसा है ? वेद कहता है कि वह निर्गुण निर्विकार और सर्व व्यापक हैं। उसको ही वेदान्ती लोग ब्रह्म, शैव लोग शिव, बौद्धपंथी बुद्ध, नैयायिक लोग कर्त्ता, जैन लोग अर्हन्, मीमांसक कर्म, ब्रह्म रूप में निर्दिष्ट करते हैं। इस सृष्टि में पदार्थों के मुख्य दो विभाग हैं। (१) साकार (२) निराकार। साकार वस्तुओं की गणना होना कठिन है। उस-घट-पर मनुष्य वृक्ष पशु पक्षी आदि अनेक प्रकार हैं और सबके भिन्न-भिन्न आकार, गुण, व्यापार आदि देखने में आते हैं, इसका कारण उनका वर्णन आप ही सब लोग उत्तमता से कर सकते हैं। अथवा रूप आदि गुणों से युक्त किसी एक व्यक्ति को समान शिवजी का व्यक्तिरूप या पुतला हमारे देखने में नहीं आता, इसका कारण, वह साकार पदार्थों के वर्ग में नहीं गिना जाता।

निराकार पदार्थों में मन, उसके काम, क्रोध, लोभ आदि विकार, भूख, प्यास, वायु आदि पदार्थ हैं। यद्यपि इन पदार्थों का आकार प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता, तथापि इनकी प्रतीति मन को होती है तथा इसका थोड़ा बहुत वर्णन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए देखो कि हमारा 'मन', क्या वस्तु है ? उसका आकार कितना बड़ा है ? यह बात आप को दिखाई नहीं देती, तथापि 'यह बात मेरे मन में आयो ही नहीं' इत्यादि वाक्यों से आप को मन का होना स्वीकार करना पड़ेगा और जो संकल्प विकल्प होते रहते हैं, तथा हम जो कुछ विचार या कल्पना करते हैं, वही मन का रूप है। अपने विचार शब्दों के द्वारा दूसरों को समझाये जाते हैं और बुद्धि बल से कुछ कविता की जाय तो वह ग्रन्थ रूप से लोगों की दृष्टि के सामने लायी जा सकती है। हाथ पैरों को कष्ट होकर नेत्रों का लाल-लाल होना, यह क्रोध का रूप है। इसकी सूरत देखने से दूसरा सहज में ही समझ लेता है। [वायु दीखता नहीं है परन्तु वृक्षों के पत्तों को हिलता हुआ देखकर अथवा किसी नदी में बड़ी-बड़ी तरंगें आती हुयी देखकर हम वायु के वेग का अनुमान करते हैं यद्यपि खबर पहुँचाने वाले तार में रहने वाली बिजली हमको दिखती नहीं है, तथापि उसके कारण होने वाले झटके खटके हमारे सुनने में आते हैं। यद्यपि सार यह है कि बहुत सी वस्तुएँ निराकार हैंतथापि उनके कार्य प्रत्यक्ष में अनुभव में आते हैं और उनका बहुत थोड़ा वर्णन हम कर सकते हैं, परन्तु; ईश्वर के विषय में ऐसा नहीं हो सकता इसके सम्बन्ध में श्रुति का कथन है कि—

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह
न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति'

अर्थात् मन, बुद्धि, वाणी और चक्षु आदि इन्द्रियों की गति ब्रह्म में या शिव में नहीं भासित होती। श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ३ में लिखा है कि—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

(श्री. म. भ. गी. अ. ३ श्लोक ४२)

इसी कारण ही शिवजी को अलक्ष्य कहते हैं आज तक जितने पदार्थ बुद्धि बल से समझे गये हैं, उन सबसे पहले वह ब्रह्म विद्या नहीं मानी जाती थी। फिर आगे को ज्ञान की परम उन्नति होकर जो पदार्थ जाने जायेंगे, शिव तत्व, निः सन्देह उन सबसे भी परे ही रहेगा, उसका वर्णन नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'नेति-नेति' कह कर ब्रह्म (शिव) का वर्णन करने के विषय में श्रुतियों के राजीनामा देने पर उन श्रुतियों के पीछे-पीछे जाने वाले जो स्मृति, शास्त्र, पुराण आदि, उन विचारों को तो ब्रह्म (शिव) का पता लगेगा ही कहाँ से ? भगवान् शिवजी की रसमयी मूर्ति के आराधन द्वारा संसार में रहकर भी काल दण्ड को मग्न करके त्रिलोकी में विचरण करने वाले ६ नाथ और ८४ सिद्धों के देह, शिवजी के आराधन द्वारा लाखों साल हुए सदेह अमर हो गये हैं। जिनके कुछ नामों को यहाँ स्मरण करते हैं। व्यालाचार्य, चन्द्रसेन, सुवुद्धि, नर वाहन, नागार्जुन, रत्नघोष, सुरानन्द, यशोधन, इन्द्रधूम, माण्डव्य, चर्पटि, शूरसेनक, आगम, नाग वुद्धि खण्ड, कापालिक, कामारि तान्त्रिक, शम्भु, लंकालम्पक शारद, वाणासुर, गोविन्दभगवत्पाद, कपिल, वलि आदि अनेक-अनेक रससिद्ध भगवान् श्री शङ्कर की रसमयमूर्ति याने रसलिङ्गार्चन के द्वारा ही इसी शरीर द्वारा अमर ही नहीं अपितु कालदण्ड को मग्न करके त्रिलोकी में विहरण करते हैं। उनमें से एक कथानक अभी याद आ गयी, जिसे आपको श्रवण कराते हैं। यहाँ पर उज्जैनी के परसिद्ध-व्योडि की कथा कही जा सकती है विदर्भ देश के कांची नगर में एक धनाढय किन्तु निःसन्तान ब्राह्मण को एक दिन स्वप्न हुआ कि वह सौ ब्राह्मणों को भोजन खिलावे और दक्षिणा दे तो उसको पुत्र उत्पन्न होगा। इस स्वप्न के अनुसार ईश्वर की पूजा और प्रार्थना करके १०० ब्राह्मणों को भोजन कराया और दक्षिणा प्रदान की। दश मास के वाद उसके घर पुत्र उत्पन्न हुआ। उस ब्राह्मण ने ज्योतिपियों को वुलाकर वालक के ग्रह दिखाये, ज्योतिषियों ने कहा वालक सब प्रकार से भाग्यवान है, किन्तु वह एक सप्ताह से अधिक जीवित नहीं रह सकता। यदि आप १०० भिक्षुओं को भोजन कराओ तो वह सात साल तक जीवित रह सकता है। उन्होंने ऐसा ही किया। वालक के जब सात साल समाप्त होने आये थे तो माता-पिता को फिर भी चिन्ता हो गयी वे अपने सामने उसे मरता हुआ देखना नहीं चाहते थे, इसलिए अपने अनुचरों की देखरेख में उसे निर्जन स्थान में भेज दिया। जहाँ वह वालक अपना शोकपूर्ण जीवन यापन कर रहा था। जैसे लंका में श्री सीताजी शोकाकुल अवस्था में देह त्याग के लिए त्रिजटा से प्रार्थना करती हैं जैसे—

त्रिजटा सन बोली कर जोरी। मातु विपति संगिनि तैं मोरी॥
तजौं देह करू वेगि उपाई। दुसहविरहु अब नहि सहि जाई॥
आनि काठ रचि चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥
सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि॥
निसि न अनल मिलु सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥
कह सीता विधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावकमयससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हत भागी॥

सुनहिं बिनय मम बिटप अशोका । सत्य नाम करु हरु मम सोका ।।
नूतन किसलय अनल समाना । देहि अगिनि जनि करहि निदाना ।।
देखि परम बिरहाकुल सीता । सो छन कपिहि कलप सम बीता ।।
कपि करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब ।
जनु अशोक अंगार, दीन्ह हरषि उठिकर गहेउ ।।

हे माता ! तू मेरी विपत्ति की संगिनी है । जल्दी कोई ऐसा उपाय कर, जिससे मैं शरीर छोड़-सकूँ । विरह असह्य हो चला है । अब यह सहा नहीं जाता । काष्ठ लाकर चिता बनाकर सजा दे । हे माता ! फिर उसमें आग लगादे । हे सयानी ! तू मेरी प्रीति को सत्य कर दे । रावण की शूल के समान दु:ख देने वाली वाणी कानों से कौन सुनें । श्री सीताजी के वचन सुनकर त्रिजटा ने चरण पकड़ कर उन्हें समझाया और प्रभु का प्रताप, बल और सुयश सुनाया । [उसने कहा] हे सुकुमारी ! सुनो ? रात्रि के समय आग नहीं मिलेगी अथवा सती साध्वी स्त्री को रात्रि में अग्नि प्रवेश अवैध है । अत: प्रात: प्रबन्ध हो जायगा । ऐसा कहकर वे अपने घर चली गयी । [श्री सीताजी मन ही मन] कहने लगीं, [क्या करूं] विधाता ही विपरीत हो गया । न आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी । आकाश में अँगारे सरीखे तारे प्रकट दिखाई देते हैं, पर, पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता । चन्द्रमा अग्नि मय है किन्तु, वह भी मानो, मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता । हे अशोक वृक्ष ! मेरी विनती सुनकर मेरा शोक हर लो और अपना (अशोक) नाम सत्य करो । तेरे .नए-नए पत्ते अग्नि के समान हैं । अग्नि दे, विरह रोग का अन्त करो (अर्थात् विरह रोग को बढ़ाकर सीमा तक न पहुँचाओ) श्रीसीताजी को विरह से परम व्याकुल देख कर वह क्षण हनुमान जी को कल्प के समान बीता । तब हनुमान जी ने हृदय में विचार कर श्रीसीता जी के सन्मुख अंगूठी डाल दी, मानो अशोक वृक्ष ही ने अंगारा दे दिया हो [यह समझ कर] श्रीसीताजी ने हर्षित हो उठकर उसे हाथ में ले लिया ।

इसी तरह जहाँ पर बालक नागार्जुन शोकपूर्ण जीवन यापन कर रहा था. वहाँ पर एक दिन बोधिसत्व-अवलोकितेश्वर, वेष बदलकर आए और नालंदा मठ में लेजाकर वहाँ रखने की अनुमति दे गये । जाते समय उन्होंने कहा कि वहाँ पर वह मृत्यु के भय से वंचित रहेगा । निर्भय हो जायगा ।

उस समय नालन्दा के मुख्य अधिष्ठाता सरह थे । उन्होंने उसी समय नागार्जुन को दीक्षा देकर भिक्षु बना लिया । संसार मनुष्य को कुपथ में ले जाता है परन्तु जब मनुष्य धर्म जीवन में प्रतिष्ठा लाभ करता है, तब निकट का संसार तुच्छ हो जाता है । धर्म की नीति से वह सब कार्य प्रचलित करता है । नागार्जुन ने धर्म को अपना कवच बनाया, जिससे वह मृत्यु के भय से मुक्त हो जाय । इसलिए इस विपत्ति के समय संसार उनको सत्य पथ से दूर नहीं ले जा सकता था । अपने धर्म जीवन के गंभीर तत्व को वह अपने आत्म जीवन के अन्तर्गत लिपि बद्ध कर गए हैं ।

मानव जीवन में संशय और अविश्वास की धारा इतनी प्रबल होती है कि मनुष्य प्रकृति राज्य को सीमा को अतिक्रमण करने के लिए सर्वथा असमर्थ हो जाता है । बालक नागार्जुन ने ईश्वर के प्रति प्रेम और दृढ़ विश्वास के कारण अपने दु:खमय जीवन का समापन किया । उसी तरह हम भी दु:खमय अवस्था से मुक्त होने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ बनें तो हम भी सहज ही सद्गुरु की प्राप्ति के द्वारा मुक्त हो

सकते हैं। इसके संबंध में अपने धर्म ग्रन्थों में गंभीर शब्दों में कहा है—

'शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आयेधामानि दिव्यानि तस्थुः।
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेवविदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽमनाय।'

'हे दिव्यधाम वासी, अमृत के पुत्रों ? सुनो ? मैंने इस अन्धकार से परे जो ज्योतिर्मय महान् पुरुष हैं, उसको जाना है। साधक लोग केवल इसको ही जानकर मृत्यु को जीत सकते हैं। इसके सिवा मुक्ति पाने का दूसरा कोई और उपाय नहीं है।' कितने मनुष्य इस वात को इतने जोर से कहते हैं। जिन्होंने सचमुच उस ज्योतिर्मय महान् पुरुष को देखा है। केवल वे ही अन्धकार से परे दिव्यधाम में जाने के लिए मनुष्य को बुला सकते हैं। मृत्यु और माया के भीतर उन्होंने ईश्वर की रोशनी देखकर इस मार्ग का पता वताया है। वे ही यथार्थ ऋषि और रहनुमा हैं, नागार्जुन ने इसी परिणामशील संसार में रहते हुए अपने दिव्य साधना योग से देह को अपरिणाम शील वताया। वह बालक वहीं पर शिक्षा प्राप्त करता रहता, अनेक वर्ष के वाद वहाँ भारी अकाल पड़ा। मठ के भिक्षु अन्न के विना वड़े संतप्त हुए। सरहभद्र को भिक्षुओं के पोषण के लिए बड़ी चिन्ता हुयी। उसी समय उन्हें ज्ञात हुआ कि समुद्र के पार एक टापू में कोई महात्मा रहते हैं जो सुवर्ण वनाना जानते हैं। नागार्जुन को उसके पास भेजे जव वह समुद्र तट पर पहुँचे तो वहाँ से टापू में जाना असंभव था। उन्होंने अपनी दैवी शक्ति से एक वृक्ष के दो पत्ते तोड़कर उसकी सहायता से टापू में जा पहुँचे, महात्मा ने नागार्जुन को देखकर आश्चर्य किया। उनसे पूछा ! आप किस प्रकार रास्ते से यहाँ आए। गीताजी में कहा है कि—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्।
ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ (श्री. भ. गी. १०।१०)

जो मुझे भजता है उसे सर्वप्रथम बुद्धि का योग देता हूँ। आपको एक कथा सुनाते हैं। किसी समय श्रीमन्नारायण ने राजा वलि से पूछा कि तुम पाँच बुद्धिमानों के साथ नरक जाना पसन्द करते हो या एक मूर्ख के साथ स्वर्ग में जाना पसन्द करते हो। वलि ने जवाव दिया कि हे स्वामिन् मैं बुद्धिमानों के साथ नर्क में रहना अत्यन्त श्रेष्ठ समझता हूँ।

.. क्योंकि जहाँ बुद्धिमान रहते हैं वहाँ स्वर्ग ही होता है और मूर्ख तो स्वर्ग को भी नरक बना देते हैं। नागार्जुन आज अपने उस कठिन मार्ग वाले द्वीप में पहुँचने की सारी कथा उस महात्मा को सुनाते हुए अपने पास वाला एक पत्ता दिखाता है और कहता है कि महाराज ! इस पत्ते के वल से आया हूँ। महात्मा ने इस शर्त पर सुवर्ण वनाने की विद्या सिखाना स्वीकृत किया कि वह एक पत्ता मुझे दे दे। नागार्जुन ने सहर्ष स्वीकार करके एक पत्ता महात्मा को दे दिया और महात्मा से वह सुवर्ण निर्माण की विद्या सीख कर दूसरे पत्ते के सहारे से समुद्र पर से लौटकर नालन्दा आ गए और इस विद्या के प्रभाव से उन्होंने नालन्दा के भिक्षाओं का कष्ट दूर किया। इसके वाद सरहभद्र की आज्ञा से वह श्री शैल जहाँ पर मल्लिकार्जुन नामक भगवान शंकर का ज्योतिलिङ्ग है वहाँ पर जाकर रहने लगे और वहाँ पर रहकर

द्वादश वर्ष पर्यन्त वट यक्षिणी नामक दिव्य योगिनी का साधन किया। तब कहीं जाकर वह प्रसन्न हुयी और कहने लगी।

"हे सिद्ध! जो कुछ तूं मांगेगा वह सब तुझे दूंगी। तब उसे प्रसन्न देखकर नागार्जुन कहने लगे"। हे देवि! यदि तूं हम पर प्रसन्न है तो तीनों लोकों में दुर्लभ पारदबन्धन वाली विद्या मेरे प्रति कहो और जिस उपाय से मृत्यु दारिद्रय का नाश करने वाली पारद को सिद्ध करने वाली साधन जिसे प्राप्त कर मैं समस्त संसार को कंचनमय बना डालूं और अपना यश संसार में फैलाऊँ तब वट यक्षिणी कहती है कि मैं तुम्हारे पास रहकर इस विद्या का साधन कराऊंगी, किन्तु; समस्त साधनों से सम्पन्न उक्त कार्य का पोषक कोई व्यक्ति मिले तभी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। नागार्जुन को रसायन विद्या के साधनार्थ इसकी चिन्ता हुयी। बिना धन व साधन के रसायन विद्या पर अनुभव लेना आसान काम नहीं। इसीलिए कुछ मालूम ऐसा देता है कि उस समय नागार्जुन उज्जयिनी के सम्राट् परमारवंश भूषण वीर विक्रमादित्य को मिले और अपना अभिप्राय प्रकट किया, नागार्जुन की बात सुन कर वह उत्तर देते हैं कि—

सुवर्णरत्न भाण्डारं कुमारी मदसुन्दरी।
निवेदितं मयात्मानं आदेशो देव दीयताम्॥

"सुवर्ण, रत्नादि का भण्डार कुमारी कन्या मदभरी सुन्दरी आदि के साथ मेरी आत्मा को भी आपको समर्पण करता हूँ। हे देव! आप आज्ञा दीजिए।" नागार्जुन को इस वाक्य से सन्तोष होता है। फिर नागार्जुन कहने लगे—"तूं हमारे उपदेश का पालक है। बुद्धिमान् और श्रेष्ठ विचारक है, तेरी सहायता से मैं अपने साधन में सफल होऊंगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

वीर विक्रमादित्य की सहायता से नागार्जुन ने रसायन विद्या में प्रगति की। इसी अनुपात में विक्रमादित्य के सारे राज्य का दारिद्रय दूर करके वीर विक्रमादित्य के सम्वत् प्रवर्तन में भी सहायता की, जो आज २०३३ वें वर्ष का सवत् प्रवर्तमान हो रहा है। यह सिद्धि हो जाने पर, नागार्जुन ने यह प्रतिज्ञा की थी कि—

"सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्यमिदं जगत्।

इस सिद्धि के द्वारा मैं जगत् के दारिद्र्य को मिटा दूंगा। इस प्रतिज्ञा के अनुसार नागार्जुन ने विक्रमादित्य को सहायता दी थी और वीर विक्रमादित्य के सुन्दर व्यवहार से प्रसन्न होकर नागार्जुन ने उनको पारद की दो स्पर्श वेंधी गुटिकाएँ बना देने का वचन दिया था। वह पारद गुटिकाओं का निर्माण कर क्षिप्रा नदी के पावन तट पर नदी के जल से धो रहे थे। प्रारब्ध वश, वह पारद की स्निग्धता के कारण हाथ से छिटक कर दोनों गुटिकाएँ नदी के जल में चली गयी। उसे मछली निगल गयी। राजा के पास जाकर सिद्धि नाश के प्रसंग को सच-सच बतलाया। राजा को पूर्वशर्त के अनुसार अपनी दो आँखे फोड़ देने को कहा। प्रजावत्सल, दानबन्धु और विक्रमादित्य ने अपना असामर्थ्य दिखाया

जलती भट्टी से दो संतप्त लोह शलाकाएँ लेकर नागार्जुन ने स्वयं अपनी आँखों में खोंस दी और दोनों आँखों से अन्धा होकर वहाँ से यात्रार्थ चल पड़ा। प्रायः अनेक तीर्थों का भ्रमण करते हुए १२ वर्ष के बाद लौटकर फिर उज्जयिनी में आया।

उसी समय विक्रमादित्य के पुत्र का शासन चल रहा था। गाँव में लोगों से पूछा कि यहाँ कोई अन्न क्षेत्र आदि हैं? लोगों ने कहा कि हाँ है! यहाँ नजदीक में ही "श्री नागार्जुन अन्न क्षेत्र" "श्री नागार्जुन पाठशाला" "श्री नागार्जुन धर्मशाला" "श्री नागार्जुन चिकित्सालय" आदि का प्रवन्ध है और उसकी प्रवन्धक यहाँ की एक वेश्या है। आश्चर्य के साथ बड़ी आतुरता से उन्होंने इसके पास ले जाने के लिए कहा। सज्जनों! हँसी के साथ कुछ सज्जन लोगों ने उनको उस वेश्या के घर अन्ध नागार्जुन को पहुँचाया जाते ही प्रथम "ॐ भवतिभिक्षां देहो" के मधुर स्वर से भिक्षा की याचना की हो वेश्या ने कहा, महाराज! श्री नागार्जुन अन्न क्षेत्र से आपको क्या भिक्षा नहीं मिली? महात्मा ने कहा कि वहाँ के प्रबन्धकों ने हमको कहा कि महाराज! भोजन तैयार है। आप भोजन पा लें। परन्तु मैंने ही आप से मिलने के बाद भोजन की इच्छा दर्शायी। अतः मैं विना भोजन आपके पास आया हूँ। मैं पूछता हूँ तुम्हें दो गुटिकाएँ मिल गयो, वेश्या ने कहा हाँ महाराज। महात्मा ने कहा क्या वे मुझे दिखा सकती हो? वेश्या ने कहा जी हाँ। कहकर दो गुटके महात्मा के हाथ में दिये। महात्मा ने स्पर्श के अन्दाज से निर्णीत कर जल में डुबोकर दोनों गुटके दोनों आँखों में स्पर्श कराये। तुरन्त ही आश्चर्य के साथ उनकी दोनों आँखें पुनः प्राप्त हो गयीं। वेश्या के साथ श्री नागार्जुन वीर विक्रमादित्य के पुत्र जो उसी समय का राजा था उसी के पास गये और सारा वृत्त निवेदित किया और वहाँ से वह पुनः यात्रार्थ चल पड़े। काले के संग गोरा बैठे रंग न बदले तो खसलत आ ही जायगी। साथ में वह वेश्या भी तीर्थ यात्रार्थ साध्वी होकर चल पड़ी। हिमालय के पावन शिखर ज्वालाजी के धाम पर पहुँचते ही संयोगवश वेश्या साध्वी का पाँच भौतिक देह पुगद्‌ल वहीं पर ही इस नश्वर संसार से पराम्बा की परम तेजो मयी ज्योति में तद्रूप को प्राप्त हो गया। आज भी ज्वालाजी के मन्दिर के सन्निकट में ही श्री नागार्जुन की कृष्ण पाषाणमयी भव्य प्रतिमा विद्यमान है जिसको वहाँ के लोग श्री नागार्जुन टोला के नाम से जानते हैं। इस सम्बन्ध में एक कथा याद आती है। वर्षा के कारण एक महात्मा एक मकान के नीचे आकर खड़े हो गये।

वह मकान वेश्या का था। सर्दी के कारण महात्मा का देह काँपता हुआ देखकर उस वेश्या ने उन्हें ऊपर बुलाकर दुशाला दिया। रात्रि को खाना इत्यादि खिलाकर वेश्या महात्मा के पाँव दाबने लगी। महात्माजी सो गए। प्रातःकाल महात्माजी ने उठकर चल दिया। वेश्या जब उठी तो उसने अपनी नौकरानी से पूछा कि महात्माजी कहाँ हैं? उसने उत्तर दिया कि वह तो चले गये। वह इस बात से बड़ी प्रभावित हुई और वह भी साध्वी बन गई। एक राजा को उससे प्रेम था। उसने पूछा कि यह तुमने क्या किया? राजा को उसने उत्तर दिया कि मैं अब वह नीच नहीं हूँ जो संसार की बुरी वस्तुओं में कीड़े की तरह लगी रहूँ। वैसे ही यह उज्जयिनी की वेश्या को भी मन में घाव लग गया और विरक्त साध्वी बनकर महात्मा श्री नागार्जुन के संग में रही तो ज्वालाजी जैसे जगदम्बा के पावन शक्ति पीठ में जिनका देह श्री नागार्जुन जैसे सिद्ध के सान्निध्य में छूटा और परमधाम को प्राप्त हुयी। किसी एक स्थान पर एक महात्मा उपदेश दे रहे थे, कहीं से घूमते हुए राजा साहब आ गए, महात्मा को प्रणाम कर बैठ गए। महात्मा ने उपदेश देते हुए कहा कि गृहस्थाश्रम बुरी चीज है। राजा कहता अच्छी चीज है। इस पर दोनों में विवाद

हो गया, कुछ दिन के वाद एक दिन राजा को महात्माजी एक ऐसे कारखाने में ले गए जहाँ पर चमड़े का कार्य होता था। राजा ने चमड़े की दुर्गन्ध के कारण नाक वन्द कर ली और कहने लगे कि यहाँ के रहने वाले कैसे रहते होंगे। महात्माजी ने कहा, जिस प्रकार आपको गृहस्थाश्रम में रहने के कारण दुर्गन्ध का अनुभव नहीं होता उसी तरह वे भी आपकी तरह दुर्गन्ध के आदी हो गए हैं। यह सब सङ्गत की महिमा है। अच्छी संगत से मानव अपना कल्याण करता है और बुरी संगत से अपना नाश भी स्वयं ही करता है।

"मुद मंगलमय संतसमाजू। जिमि जग जंगम तीरथ राजू"।

वेश्या साध्वी को उत्तमगति प्रदान करके वहाँ से हिमाचल की कठिन घाटियों को पार करते हुए मानसरोवर जाते समय मार्ग में ही पंजाव के महासम्राट् श्री शालिवाहन या सालवाहन को मिले। जो वीर विक्रमादित्य के वंश में ही विक्रमादित्य से २०० साल वाद हुए हैं। जिन्होंने अपना समस्त खजाना धर्म के निमित्त ही साफ कर दिया था। पूर्व के सम्वन्धानुसार धर्म परायण राजा को उदारवृत्ति को लक्ष्य में लेते हुए प्रसन्न होकर अपनी रससिद्धी के द्वारा राज्य का खजाना पुनः अटूट सुवर्ण से परिपूर्ण कर दिया और इनके नाम से सारे भारत में शालिवाहन शक का प्रवर्तन किया, जिसका आज १८६८ वर्ष चल रहा है। सन्त पुरुषों का समागम क्या नहीं कर सकता ?

शालिवाहन को सहायता कर वहाँ से हिमालय की कठिन घाटियों से मानसरोवर जाते समय मार्ग में नागालैण्ड जो अभी-अभी वना है। वहाँ पर नागार्जुन के पहुँचने पर संयोगवश दोनों गुटिकाएँ फिर वहीं पर हिमाचल की खदानों में गिर गई आज भी वहाँ के लोग उस कथन की कर्णोपकर्ण श्रुति को तथ्य के रूप में मानते हुए भेड़-वकरी आदि के पैरों में नाली जो लोहे की होती है उसे जुड़वा कर चलते हैं। मार्ग में कहीं पर उसे छूने पर वे स्वर्ण को हो जाती हैं। जहाँ पर वे गुटिकाएँ गिरी थीं यह सब रसलिङ्ग के प्रभाव को आप ने सुना। अव इसके ही दर्शन का क्या फल होता है वह फल देखें—

शताश्वमेधेन कृतेन पुण्यं
गोकोटिभिः स्वर्णसहस्रदानात्।
नृणां भवेत्सूतकदर्शनेन
सर्वेषु तीर्थेषु कृताभि षेकात् ॥

सौ अश्वमेध यज्ञ सुवर्ण के साथ एक कोटि गोदान और सभी तीर्थों के जल से शिव अभिषेक का जो पुण्य प्राप्त होता है वह केवल पारद के शिवलिङ्ग दर्शन मात्र से होता है। १००० स्वयम्भू शिव-लिङ्गों के सभी प्रकार से पूजन करने पर जो फल मिलता है उसको एक करोड़ से गुणा करने पर जो फल आता है उतना पुण्य रसलिङ्ग याने पारद के शिवलिङ्ग के पूजन से होता है। जिसके घर में भगवान् श्री रसेश्वर का भक्तिपूर्वक पूजन करने से होता है उसके घर धन का अभाव-मानसिक पीड़ा शारीरिक पीड़ा नहीं होती और मनुष्य का भाग्य महान ऐश्वर्य से युक्त होता है। लङ्का का अधिपति रावण भी इसी

जलती भट्टी से दो संतप्त लोह शलाकाएँ लेकर नागार्जुन ने स्वयं अपनी आँखों में खोंस दी और दोनों आँखों से अन्धा होकर वहाँ से यात्रार्थ चल पड़ा। प्रायः अनेक तीर्थों का भ्रमण करते हुए १२ वर्ष के बाद लौटकर फिर उज्जयिनी में आया।

उसी समय विक्रमादित्य के पुत्र का शासन चल रहा था। गाँव में लोगों से पूछा कि यहाँ कोई अन्न क्षेत्र आदि हैं? लोगों ने कहा कि हाँ है! यहाँ नजदीक में ही "श्री नागार्जुन अन्न क्षेत्र" "श्री नागार्जुन पाठशाला" "श्री नागार्जुन धर्मशाला" "श्री नागार्जुन चिकित्सालय" आदि का प्रबन्ध है और उसकी प्रबन्धक यहाँ की एक वेश्या है। आश्चर्य के साथ बड़ी आतुरता से उन्होंने इसके पास ले जाने के लिए कहा। सज्जनों! हँसी के साथ कुछ सज्जन लोगों ने उनको उस वेश्या के घर अन्ध नागार्जुन को पहुँचाया जाते ही प्रथम **"ॐ भवतिभिक्षां देही"** के मधुर स्वर से भिक्षा की याचना की ही वेश्या ने कहा, महाराज! श्री नागार्जुन अन्न क्षेत्र से आपको क्या भिक्षा नहीं मिली? महात्मा ने कहा कि वहाँ के प्रबन्धकों ने हमको कहा कि महाराज! भोजन तैयार है। आप भोजन पा लें। परन्तु मैंने ही आप से मिलने के बाद भोजन की इच्छा दर्शायी। अतः मैं बिना भोजन आपके पास आया हूँ। मैं पूछता हूँ तुम्हें दो गुटिकाएँ मिल गयी, वेश्या ने कहा हाँ महाराज। महात्मा ने कहा क्या वे मुझे दिखा सकती हो? वेश्या ने कहा जी हाँ। कहकर दो गुटके महात्मा के हाथ में दिये। महात्मा ने स्पर्श के अन्दाज से निर्णीत कर जल में डुबोकर दोनों गुटके दोनों आँखों में स्पर्श कराये। तुरन्त ही आश्चर्य के साथ उनकी दोनों आँखें पुनः प्राप्त हो गयी। वेश्या के साथ श्री नागार्जुन वीर विक्रमादित्य के पुत्र जो उसी समय का राजा था उसी के पास गये और सारा वृत्त निवेदित किया और वहाँ से वह पुनः यात्रार्थ चल पड़े। काले के संग गोरा बैठे रंग न बदले तो खसलत आ ही जायगी। साथ में वह वेश्या भी तीर्थ यात्रार्थ साध्वी होकर चल पड़ी। हिमालय के पावन शिखर ज्वालाजी के धाम पर पहुँचते ही संयोगवश वेश्या साध्वी का पाँच भौतिक देह पुगद्ल वहीं पर ही इस नश्वर संसार से परामम्बा की परम तेजो मयी ज्योति में तद्रूप को प्राप्त हो गया। आज भी ज्वालाजी के मन्दिर के सन्निकट में ही श्री नागार्जुन की कृष्ण पाषाणमयी भव्य प्रतिमा विद्यमान है जिसको वहाँ के लोग श्री नागार्जुन टीला के नाम से जानते हैं। इस सम्बन्ध में एक कथा याद आती है। वर्षा के कारण एक महात्मा एक मकान के नीचे आकर खड़े हो गये।

वह मकान वेश्या का था। सर्दी के कारण महात्मा का देह काँपता हुआ देखकर उस वेश्या ने उन्हें ऊपर बुलाकर दुशाला दिया। रात्रि को खाना इत्यादि खिलाकर वेश्या महात्मा के पाँव दाबने लगी। महात्माजी सो गए। प्रातःकाल महात्माजी ने उठकर चल दिया। वेश्या जब उठी तो उसने अपनी नौकरानी से पूछा कि महात्माजी कहाँ हैं? उसने उत्तर दिया कि वह तो चले गये। वह इस बात से बड़ी प्रभावित हुई और वह भी साध्वी बन गई। एक राजा को उससे प्रेम था। उसने पूछा कि यह तुमने क्या किया? राजा को उसने उत्तर दिया कि मैं अब वह नीच नहीं हूँ जो संसार की बुरी वस्तुओं में कीड़ की तरह लगी रहूँ। वैसे ही यह उज्जयिनी की वेश्या को भी मन में घाव लग गया और विरक्त साध्वी बनकर महात्मा श्री नागार्जुन के संग में रही तो ज्वालाजी जैसे जगदम्बा के पावन शक्ति पीठ में जिनका देह श्री नागार्जुन जैसे सिद्ध के सान्निध्य में छूटा और परमधाम को प्राप्त हुयी। किसी एक स्थान पर एक महात्मा उपदेश दे रहे थे, कहीं से घूमते हुए राजा साहब आ गए, महात्मा को प्रणाम कर बैठ गए। महात्मा ने उपदेश देते हुए कहा कि गृहस्थाश्रम बुरी चीज है। राजा कहता अच्छी चीज है। इस पर दोनों में विवाद

हो गया, कुछ दिन के बाद एक दिन राजा को महात्माजी एक ऐसे कारखाने में ले गए जहाँ पर चमड़े का कार्य होता था। राजा ने चमड़े की दुर्गन्ध के कारण नाक बन्द कर ली और कहने लगे कि यहाँ के रहने वाले कैसे रहते होंगे। महात्माजी ने कहा, जिस प्रकार आपको गृहस्थाश्रम में रहने के कारण दुर्गन्ध का अनुभव नहीं होता उसी तरह वे भी आपकी तरह दुर्गन्ध के आदी हो गए हैं। यह सब सङ्गत की महिमा है। अच्छी संगत से मानव अपना कल्याण करता है और बुरी संगत से अपना नाश भी स्वयं ही करता है।

"मुद मंगलमय संतसमाजू। जिमि जग जंगम तीरथ राजू"।

वेश्या साध्वी को उत्तमगति प्रदान करके वहाँ से,हिमाचल की कठिन घाटियों को पार करते हुए मानसरोवर जाते समय मार्ग में ही पंजाव के महासम्राट् श्री शालिवाहन या सालवाहन को मिले। जो वीर विक्रमादित्य के वंश में ही विक्रमादित्य से २०० साल बाद हुए हैं। जिन्होंने अपना समस्त खजाना धर्म के निमित्त ही साफ कर दिया था। पूर्व के सम्बन्धानुसार धर्म परायण राजा को उदारवृत्ति को लक्ष्य में लेते हुए प्रसन्न होकर अपनी रससिद्धी के द्वारा राज्य का खजाना पुनः अटूट सुवर्ण से परिपूर्ण कर दिया और इनके नाम से सारे भारत में शालिवाहन शक का प्रवर्तन किया, जिसका आज १८९८ वर्ष चल रहा है। सन्त पुरुषों का समागम क्या नहीं कर सकता ?

शालिवाहन को सहायता कर वहाँ से हिमालय की कठिन घाटियों से मानसरोवर जाते समय मार्ग में नागालैण्ड जो अभी-अभी वना है। वहाँ पर नागार्जुन के पहुँचने पर संयोगवश दोनों गुटिकाएँ फिर वहीं पर हिमाचल की खदानों में गिर गई आज भी वहाँ के लोग उस कथन की कर्णोपकर्ण श्रुति को तथ्य के रूप में मानते हुए भेड़-वकरी आदि के पैरों में नाली जो लोहे की होती है उसे जुड़वा कर चलते हैं। मार्ग में कहीं पर उसे छूने पर वे स्वर्ण की हो जाती हैं। जहाँ पर वे गुटिकाएँ गिरी थीं यह सब रसलिङ्ग के प्रभाव को आप ने सुना। अब इसके ही दर्शन का क्या फल होता है वह फल देखें—

शताश्वमेधेन कृतेन पुण्यं
गोकोटिभिः स्वर्णसहस्रदानात्।
नृणां भवेत्सूतकदर्शनेन
सर्वेषु तीर्थेषु कृताभिषेकात् ॥

सौ अश्वमेघ यज्ञ सुवर्ण के साथ एक कोटि गोदान और सभी तीर्थों के जल से शिव अभिषेक का जो पुण्य प्राप्त होता है वह केवल पारद के शिवलिङ्ग दर्शन मात्र से होता है। १००० स्वयम्भू शिव-लिङ्गों के सभी प्रकार से पूजन करने पर जो फल मिलता है उसको एक करोड़ से गुणा करने पर जो फल आता है उतना पुण्य रसलिङ्ग याने पारद के शिवलिङ्ग के पूजन से होता है। जिसके घर में भगवान् श्री रसेश्वर का भक्तिपूर्वक पूजन करने से होता है उसके घर धन का अभाव-मानसिक पीड़ा शारीरिक पीड़ा नहीं होती और मनुष्य का भाग्य महान ऐश्वर्य से युक्त होता है। लङ्का का अधिपति रावण भी इसी

रसलिङ्ग की आराधना द्वारा ही लंकापति हुआ था और अपनी नगरी को स्वर्णमय बना दिया था। एवं आधुनिक समय के अनुरूप आधिभौतिक सम्पत्ति से समर बनाई थी। कहते हैं कि रावण ने पृथ्वी-पानी-तेज-वायु-आकाश कालदिशा आत्मा आदि पर आधिपत्य स्थापित करके इनसे नौकरी करवाता था। परन्तु उसका सारांश यही है कि पृथ्वी पर शासन करके रेलवे-मोटर कार आदि के समान उसी समय कोई यातायात के साधन निर्मित किए थे। पानी पर आधिपत्य स्थापित करके जलयान-जलकूप-नहरें आदि का निर्माण करके एवं आधुनिक प्रकार की नल गटर की योजना द्वारा सुख के साधनों का निर्माण किया, तेज और वायु पर आधिपत्य स्थापित करके वायुयान राकेट आदि का निर्माण किया था तथा रोशनी के साधन निर्मित किये थे। आकाश को स्वाय न करके आकाशवाणी (रेडियो) टेलीफोन-टेलीविजन आदि के सदृश साधनों का निर्माण किया था और वह भी इस पारद के ही प्रयोगों के द्वारा ही जिस कारण आधुनिक साधनों के लिए जैसे तेल की आवश्यकता होती है वैसे उन साधनों में पारद का ही प्रयोग होता था। उसका सभी प्रकार से रावण ने प्रयोग करके सुविधा के साधन वनाए थे और अपनी नगरी को सुवर्णमय बना दी थी। सारांश यह है कि आधुनिक समय के अनुरूप वहाँ पर भौतिक साधन संपत्ति का प्रचुर मात्रा में आधिक्य याने आधिपत्य था।

उसी प्रकार द्वापर युग में हमारे गुजरात प्रदेश के सौराष्ट्र मण्डल स्थित द्वारिकापुरी के विकास का मूलाधार भी यही रसलिङ्ग था। जिसको साधना द्वारा कृष्ण ने सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था। लङ्का के सदृश द्वारिका नगरी भी सुवर्णमय थी। आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के द्वारा यह निर्णय भी हो चुका है कि ओखा के पास बेट द्वारिका से वायव्य कोण में तीन मोल की दूरी पर समुद्र जहाँ तूफानी है वहाँ पर आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के द्वारा यह भी जाना गया है कि सुवर्णमय द्वारिकापुरी के भग्नावशेष दिवारें आदि का भुंगार आज भी समुद्र के मध्य विद्यमान है। परन्तु वहाँ पर गुरुत्वाकर्षण के आधिक्य के कारण संशोधन के द्वारा सुवर्णादि के भग्नावशेष निकालने का कोई अवकाश नहीं है। यह सभी रसलिङ्ग के पूजनादि से प्राप्त होने वालो रस संस्कार के १८ संस्कारों की भिन्न-भिन्न प्रकार को प्रायोगिक सिद्धियों का स्थायीकरण ही वैभव का साधन होता था। आज भी भारतीय इन्जीनीयरिंग के प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञान होता है कि भूचरी गुटिका-खेचरी गुटिका-भूविवर प्रवेश कारिणी गुटिका आदि का निर्माण इस रसेश्वर के भिन्न-भिन्न संस्कारों के फलस्वरूप था। आज यह प्रक्रियाओं का क्रियात्मक ज्ञान नष्ट हो जाने के कारण वह सब प्रक्रियाएँ आकाश कुसुम वन्दि फल मानी जाती हैं। भगवान् श्रीशंकर की कृपा द्वारा हो ये सिद्धियो की प्राप्ति कोई श्रेष्ठवान कर सकता है। इस रससिद्धि से अंतिम सिद्धि सुवर्ण ही नहीं परन्तु अपना यह पार्थिव देह भी अजर-अमर हो जाता है। वैसे ही नागार्जुन आज भी अमर हैं तदर्थं कहा है कि—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ॥

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥

सज्जनों ! वैदिक दर्शनों में मुक्ति, शरीर त्याग के वाद मानी गयी है। परन्तु, दुर्लभ मनुष्य देह को सुन्दर नौका स्वरूप में प्राप्त करके जो मुक्ति के लिए यत्न नहीं करता, वह आत्मघाती माना गया है। यहाँ इस सम्प्रदाय में इसी शरीर में ही मुक्ति का पाना, निर्देश किया गया है। इस सम्प्रदाय में शरीर छूटने के बाद में मुक्ति होना विश्वास योग्य नहीं माना गया। जिन्होंने इसी शरीर में ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया, वे मरने के बाद ईश्वर को प्राप्त करेंगे। इसमें क्या विश्वास ? इसलिए इसी को हर गौरी रस के संयोग से अजर-अमर करना चाहिए। सांख्य दर्शन में जीवन्मुक्त स्थिति का जो वर्णन कहा है, योग दर्शन में उसे ही असम्प्रज्ञात स्थिति के नाम से सम्वोधित किया है। वही स्थिति रससिद्ध व्यक्ति इसी जीवन में पारद की कृपा द्वारा प्राप्त कर लेता है, इसी से रसशास्त्र को भी दर्शनों में स्थान मिला है।

सिद्धों ने पारद द्वारा ही जीवन मुक्त होने का प्रयत्न किया। इनकी 'मुक्ति सांख्य और योग के समान त्याग मूलक नहीं हैं। इनकी दृष्टि में विषयादि का सेवन करते हुए निर्लिप्त रहकर जीवन मुक्त होना यहीं है। इस हृदयतंत्र में कहा है कि—

परमात्मनीव नियतं भवति लये सर्वसत्त्वानाम्।
एको ह्यसौ रसराजः कुरुतेऽजरामरम्॥

यदि पारदहीन धातु को उच्च धातु में परिवर्तित कर सकता है, तो वह जीर्ण-शीर्ण शरीर को भी पुनः नया जीवन दे सकता है। इसलिए इसकी परीक्षा धातु पर करनी चाहिए। अजर - अमर शरीर की विद्या-धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का आधार है। इस लिए शरीर अजर अमर होने से अधिक श्रेय क्या हो सकता है। केवल पारद ही शरीर को अजर-अमर कर देता है। पारद शिव वीर्य होने के कारण साक्षात् शिवरूप ही माना गया है। सभी शिवलिङ्गों में प्राण प्रतिष्ठा का विधान शास्त्र में दर्शाया है। परन्तु पाषाणमय नर्मदा नार्मद के शिवलिङ्ग और रसलिङ्ग में प्राण प्रतिष्ठा का करना शिवक्षोभ करने वाली है। ऐसा निर्दिष्ट किया गया है।

शरीर की स्थिरता ही पिण्डस्थैर्य है। शरीर में स्थिरता पारद से होती है। जिस शरीर में पारा स्थिर रहता है वही शरीर स्थिर हो जाता है। पिण्ड धारण के दो मार्ग शास्त्रों में निर्दिष्ट किए हैं। एक पारद के योग से और दूसरा वायु के द्वारा। शरीर के अन्दर प्राणायाम के द्वारा वायु को स्थिर करके या पारद को अभ्रक और गन्धक के द्वारा स्थिर करके शरीर को स्थिर करना।

प्राणायाम के द्वारा वायु का स्थैर्य करने के लिए गीता में कहा है कि—"योगीजन प्राण वायु में अपान वायु का हवन करते हैं। कोई योगी अपान में प्राण का हवन करते हैं। तीसरे योगी प्राणापान की गति रुद्ध करके प्राणायाम करते हैं। कई योगी जन नियमित आहार-विहार द्वारा प्राणों का प्राणों में हवन करते हैं।

मनुष्यों का संसार में यदि बन्धन होता है तो स्त्री से होता है, वैसे पारद का वन्धन याने नियन्त्रण अभ्रक और गन्धक से ही होता है। पारद को बन्धन करनेवाली गौरी है।

इनसे बन्धित याने अग्निस्थायी किया हुआ पारद पिण्ड (शरीर) को स्थिर करता है और पिण्ड स्थिरता से साधक को जीवन मुक्ति मिलती है। इसकी कृपा द्वारा जोवन मुक्त होने वाले सिद्धों में नव-नाथ और चौरासी सिद्ध प्रधान हैं। उनमें से कुछ सिद्धों का यहाँ पर स्मरण किया जाता है। व्यालाचार्य, चन्द्रसेन, सुबुद्धि, नरवाहन, नागार्जुन, रत्नघोष, सुरानन्द, यशोधन, इन्द्रधूम, माण्डव्य चर्पटि, शूरसेनक, आगम, नागबुद्धि, खण्ड, कापालिक, कामारि, तांत्रिक, शंभु, लक, लंकप, शारद, वाणासुर, गोविन्द भगवत्पाद, कपिल, वलि आदि २६ हैं।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।।

इस कथनानुसार ये सिद्ध काल दण्ड को भग्न करके अमर हो चुके हैं। वैसा निर्देश मिलता है ये रससिद्धि के द्वारा रससिद्ध हो गये हैं। इस सम्वन्ध में एक कथा याद आती है। मालवा की राजधानी धारा नगरी के विषय में एक कहानी प्रसिद्ध है। उसी समय वहाँ पर राजा भोज का शासन चलता था उन दिनों राजा महल में दीर्घाकार आयात चाँदी का एक टुकड़ा था। इसमें मनुष्य के हाथ पैरों की वाहरी रेखायें दीखती थी। इसकी उत्पत्ति के विषय में यह कहानी है—

वहुत समय पहले कोई एक मनुष्य अपने राजा के पास रसायन लेकर आया। जिसके सेवन से मनुष्य अमर अदृश्य, अजेय और सब कार्यों के करने में क्षमताशील हो जाता है। उसने कहा कि वह अकेला ही उससे मिलने आये, राजा ने सब लोगों को समय के लिए तैयार रहने के लिए कह दिया।

मनुष्य ने तेल उवालना प्रारम्भ किया जो कई दिन तक चलता रहा। जब अन्त में वह समाप्ति पर आगया तव उसने राजा को कहा कि इसमें कूद जाओ जिससे मैं इस क्रिया को समाप्त करूँ। परन्तु राजा डर के मारे उसमें डूबकी लगाने का साहस नहीं कर सका। मनुष्य उसकी बुजदिली से उत्तेजित होकर कहने लगे —

यदि तुममें साहस नहीं, तुम यदि नहीं करना चाहते, तो क्या मुझे डूबकी लगाने की आज्ञा देते हो ? राजा ने कहा—करो जैसी तुम्हारी इच्छा। अब उसने औषधियों के वहुत से पैकेट वनाये और राजा को समझा दिया कि किस लक्षण में कौन-सा पैकेट डाले। तव मनुष्य भट्टी के सामने आया और उसने अपने देह को तैल में गिरा दिया। वह तुरन्त ही उसमें घुल गया और गूदे के रूप में हो गया। राजा ने सूचनानुसार कार्यारम्भ किया। उसके पास जब केवल एक ही पैकेट वाकी रह गया। जो कि मिलाया नहीं गया था। राजा परिणाम को जानने के लिए उत्सुक हुआ। क्या मनुष्य अमर अजेय अदृश्य होकर वापिस आजायगा। जैसा कि उसने कहा था। इसलिए उसने अंतिम पैकेट नहीं डाला। परिणाम यह हुआ कि आग वुझ गई और घुला हुआ मनुष्य चाँदी का टुकड़ा बन गया था।

इस प्रकार की एक कहानी सौराष्ट्र के वल्लभी नगर के राजा वल्लभ के विषय में कही जाती है। एक बार एक सिद्ध ने एक गड़रिये से पूछा कि उसने क्या थोर की भाँति का कोई ऐसा वृक्ष देखा है कि जिसमें दूध के स्थान पर रक्त निकले। गड़रिये ने कहा कि मैंने देखा है। तब उसने गड़रिये

को खाने पीने के लिए कुछ रुपया दिया और कहा कि उसे वह वृक्ष दिखा दे। गड़रिये ने जब उसे वृक्ष दिखा दिया, तब उसने उसमें आग लगादी और गड़रिये के कुत्ते को उसमें फेंक दिया। गड़रिये ने भी गुस्से में आकर उस सिद्ध को भी पकड़ कर अग्नि में डाल दिया। गड़रिया आग बुझने की प्रतीक्षा करने लगा। आग बुझने पर उसने देखा कि मनुष्य और कुत्ता दोनों सोने में बदल गए। उसने कुत्ते को अपने साथ में लिया और मनुष्य को वहीं पर छोड़ दिया।

इस बीच में कोई कंगाल उधर आ निकला। उसने उसकी एक अंगुली काट ली और वह फल विक्रेता के पास पहुँचा। फल विक्रेता का नाम रंक अर्थात् दरिद्री था। क्योंकि वह बहुत कंगाल था। एक प्रकार से बहुत तंगदस्त रहता था। कंगाल उससे अपनी जरूरत का सामान लेकर वहीं पर लौट आया। वहाँ पर उसने देखा कि उस मनुष्य में फिर सोने की अंगुली निकल आयी है। उसने उसको फिर काट लिया और फिर उसी फल के विक्रेता के पास आकर जरूरत का सामान लिया। परन्तु; जब फल विक्रेता ने उससे पूछा कि अँगुली कहाँ से मिली, तो उस मूर्ख ने उसे सब कुछ बता दिया। रंक सिद्ध के पास जाकर उसे गाड़ी में उठवाकर अपने घर ले आया। वह अपने पुराने घर में रहकर धीरे-धीरे सारे शहर को खरीदने को सोचने लगा। राजा वल्लभ शहर को अपना बनाना चाहता था, उसने उससे कहा कि रुपये के लिए इस विचार को छोड़ दे परन्तु रंक ने इन्कार किया। वल्लभ के डर से वह अलमन्सूरा के राजा के पास भाग गया। उसने उसको रुपयों का उपहार देकर प्रार्थना की वह नाविकों से उसकी मदद करें। राजा अलमन्सूरा ने उसकी इच्छा पूर्ण कर दी। इससे सहायता लेकर उसने राजा वल्लभ पर रात्रि में आक्रमण किया, राजा को और उसके साथियों को मार शहर को ध्वंस कर दिया। मनुष्य कहते हैं कि यह घटना हमारे सामने की है। वे कहते हैं कि शहर में आज भी उस समय के ध्वंसावशेष मौजूद है।

यह सब रसराज पारद के सिद्ध होने की कृपा का फल है, पारद के संयोग द्वारा शरीर अजर अमर हो जाता है वैसे देह अक्षोभ्य हो जाता है। मतलब यह है कि नाशवन्त देह भी अविनाशी बन जाता है। पिण्ड स्थैर्य हो जाता है। कारण यह है कि संसार में कर्म योग दो प्रकार का माना गया है। एक पवन द्वारा और दूसरा रस द्वारा 'रसश्च पवनश्चैव कर्मयोगो द्विधा मतः।' इस प्रकार की कहानी पुराण काल में भी कही गयी है। जो इस प्रकार है—जो द्वारिका के राजा सुधन्वा और स्मृतिकार शंख महर्षि को तेल के कड़ाह में उबलते हुए भी वैसे ही सशरीर बाहर आये थे। यह सब भगवान् श्री रसेश्वर के अचिन्त्य प्रभाव का परिणाम है।

"एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ॥"

यह नाशवन्त संसाराडम्बरात्मक महाप्रपंच में पंचीकृत पंचतत्वों की स्थिरता इसी रसराज याने पारद की साधना द्वारा कराया जा सकता है। इस स्थिरता के प्रयोजन को रस हृदयतंत्र में भगवान् श्री आद्यशंकराचार्य के गुरुवर्य श्री गोविन्दभगवत्पाद निरूपित करते हैं।

आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।
श्रेयः परं किमन्यच्छरीरमजरामरं विहायैकम् ॥

"विद्याओं का आश्रय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिए देह एक ही परम साधन है। जिसके लिए देह को अजरामर बनाना मुख्य कर्तव्य माना गया है। इसके अतिरिक्त परम श्रेय की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?" क्योंकि जो देह वृद्धावस्था से जर्जरित हुआ तथा कासश्वासादि से परवश हुआ, बुद्धि और इन्द्रियों की शक्ति से हीन हुआ वह समाधि का अभ्यास करने में कैसे समर्थ हो सकता है ? षोडशवर्ष पर्यन्त बाल्यावस्था में व्यतीत करने वाला (कर्त्तव्याकर्त्तव्य को न जानने वाला) पश्चात् विषय सुखास्वाद में फँसा हुआ (कर्त्तव्यच्युत) युवक तदनंतर वृद्ध बना हुआ विवेकहीन मनुष्य मोक्ष को कैसे प्राप्त कर सकता है ? जिन जिज्ञासुओं को जीवित अवस्था में ही परमात्मा का दर्शन नहीं हुआ उन्हें देह त्याग के उपरान्त विश्व के कारण रूप ब्रह्म की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? अर्थात् उससे अत्यन्त दूर ही है। ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, इन्द्र आदि देवता और कल्प पर्यन्त देह को धारण करने वाले मार्कण्डेय आदि महर्षि तथा जीवनमुक्त महायोगी सिद्ध योगी दिव्य देह धारण करके ही उस परब्रह्म की उपासना करते हैं।

इसलिए जीवन्मुक्ति की प्राप्ति की चाहना करने वाले योगी जनों को चाहिए की वह सर्व प्रथम शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पारद को अभ्रक सत्व का ग्रास कराकर उसका यथा विधि सेवन करके दिव्य देह की प्राप्ति करें। वैसे ही जिसने दिव्य देह प्राप्त किए हैं वैसे नागार्जुन आदि अनेक सिद्ध अपने दिव्य देह द्वारा कालदण्ड को मानकर के समस्त ब्रह्माण्ड मण्डल में विचरते हैं। उनमें से उज्जैनी के परमश्रेष्ठ द्विजवर की कथा याद आती है। सज्जनों ! उसे आप ध्यानपूर्वक श्रवण करें। उज्जैनी के महाराजा विक्रमादित्य जिनके नाम से विक्रम संवत् चल रहा है जिनका प्रवर्तमान् आज का वर्ष २०३६ है। उसकी राजधानी में याने उज्जैन में एक ब्राह्मण रहता था जिसका नाम व्याडी था। इसने अपना सारा जीवन और सारा धन नष्ट कर दिया। परन्तु रस साधना में सफलता नहीं प्राप्त हुयी, जो कि सामान्यरूप से हो सकती थी। इसी से वह निराश होकर क्षिप्रा नदी के किनारे जाकर अपने इस ग्रन्थ के साथ बैठ गया। उसने अपने हाथों में जो ग्रन्थ अर्थात् अपना फार्मो को पींया औषध निर्माण की पुस्तक थी जिसमें से वह अपनी चिकित्सा में नुसखा लेता था। परन्तु आज जब वह इसका एक-एक पन्ना फाड़कर नदी के जल में बहाने लगा। भाग्यवश एक वेश्या नदी के प्रवाह की ओर नीचे के भाग में बैठो थी वह एक-एक पत्र को बटोरती गयी। उन सबको जोड़कर उसने देखा कि इनका सम्बन्ध रसायन से है। जबतक सब पत्र समाप्त नहीं हो गए तबतक व्याडी का ध्यान उस वेश्या की ओर नहीं गया। पत्र इकट्ठे करके वेश्या उसके पास आयी और उससे पूछा कि उसने यह सब किस लिए किया।

व्याडी ने कहा कि मुझे विश्वास हो गया है कि यह सब व्यर्थ है। मुझे जो मिलना चाहिए था वह नहीं मिला। इसके पीछे मैं भिखमंगा बन गया, मेरा सब कुछ जाता रहा। वेश्या ने कहा उद्यम मत छोड़ो, जिसके पीछे तुमने सारा जीवन बिताया, उसके लिए निराश न बनो। इसमें कुछ-न-कुछ अड़चन या बाधा अवश्य है। जो इसको रोकती है। सम्भवतः इसमें कोई आकस्मिक बात है जो कि सहसा ही दूर होगी। मेरे पास पर्याप्त धन है वह सब तुम्हारा ही है। इससे तुम अपना काम करो। इससे व्याडी ने फिर से कार्यारम्भ किया।

अतिशय रगड़ करै ;जो कोई। अनल प्रगट चन्दन ते होई ॥

इसके अनुसार दुर्भाग्य से पुस्तक पहेली रूप में लिखी हुयी थी। शास्त्र में भी कहा है कि—

यादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः ।
सहायास्तादृशाः सर्वे यादृशी भवितव्यता ।।

मनुष्य की वुद्धि जिस प्रकार की होती है, वैसे वह व्यवसाय भी उसके अनुरूप करता है। इसी से उसके सहायक भी उसी प्रकार के मिलते हैं जैसा भावी में होने वाला है। प्रथम पुस्तक के गूढ़ आशयों को समझने की व्याडी में शक्ति नहीं थी। पुस्तक में एक शब्द ऐसा था जिसका अर्थ तेल और मनुष्य का रक्त दो प्रकार से होता था। दोनों वस्तुओं की इसमें आवश्यकता थी। पुस्तक में रक्त मात्र लिखा था। उनसे उन्होंने लाल आँवला का अर्थ किया था। उसने जव आँवला डाला तव कुछ भी लाभ नहीं हुआ। अव उसने भिन्न-भिन्न औषधियों से कार्य करना प्रारम्भ किया। किन्तु ज्वाला उसके सिर को छूने लगी और दिमाग सूखने लगा इसलिए उसने सिर पर खूव तेल डाला। एक दिन वह अपने अग्नि कर्म के स्थान से चलने लगा तो उसने देखा कि उसके सिर के ऊपर छत में एक कील निकल रही है। उसने उससे अपना सिर टकराया, जिससे रक्त निकलने लगा। दर्द के कारण वह नीचे देखने लगा जिससे कि उसके सिर से तेल मिला रक्त विना उसके जानकारी के आग में गिरने लगा। पकने की क्रिया जव समाप्त हो गयी तव वह और उसकी पत्नी इस तैयार औषध को अपने देह पर लेप की तरह पोतने लगे जिससे कि इसकी परीक्षा हो सके। वे दोनों ही आकाश में उड़ने लगे। विक्रमादित्य ने जव इस समाचार को सुना वह तुरन्त ही उस स्थान पर पहुँचा, जिससे वह अपनी आँखों से देख सके। तव आदमी चिल्लाया कि मेरे थूक के लिए मुँह खोलो। परन्तु राजा ने मुख नहीं खोला इसलिए थूंक दरवाजे के पास गिरा और देहली तुरन्त ही सोने से भर गयी। व्याडी और स्त्री अपनी इच्छानुसार उड़ने लगे। उसने इस विद्या पर पुस्तक लिखा। लोग कहते हैं कि वे स्त्री और पुरुष आज भी जीवित हैं कारण—

एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ।

इसी से इस दर्शनों में कहा है कि—

पिण्डपाते तु च मोक्षः स च मोक्षो निरर्थकः ।
पिण्डे तु पतिते देवि गर्दभोऽपि विमुच्यते ।।

अर्थात् इसी शरीर को ही सिद्धि के द्वारा स्थिरता प्रदान करना यही रस दर्शन का उद्देश्य है। क्योंकि देहपात के वाद गधा भी मोक्ष लाभ करता है। वह योग्य नहीं आज उसी सिद्धान्तानुसार ही रस के दिव्य साधन द्वारा नवनाथ और ८४ सिद्धों ने देह को सिद्ध करके अजर-अमर बनाया है। वे काल दण्ड को भग्न करके अर्थात् काल के ऊपर विजय प्राप्त करके स्वयं अक्षोभ्य स्वरूप को प्राप्त हो गए हैं। यह सव शास्त्र और शिव में अटूट अन्धश्रद्धा का फल है। सामान्य श्रद्धा का दिखावा और विद्वत्ता से ही रस सिद्धि प्राप्त करना आसान काम नहीं, उसमें इस जन्म और पूर्व जन्मों के पुण्यों के परिपाक विना यह सिद्धि सरलता से साध्य नहीं।

यदि किसी को सरलता से यह सिद्धि सुलभ हो भी जाय तो वह ही होती । फलदायक क्योंकि एक तालाव में साँप और गौ दोनों ही पानी पीते हैं । पर वह जल साँप में विष को उत्पन्न करता है और गौ में अमृत स्वरूप दूध को उत्पन्न करता है । जल वही एक ही तालाव का है तथापि पात्र भेद से फल में भेद अवश्य होता है । इसी तरह जिस जल के प्रभाव से वगीचे में अनेक प्रकार के सुन्दर पुष्पों की उत्पत्ति होती है, वही तीक्ष्णकारों का भी उत्पादक होता है । तात्पर्य यह है कि जैसे जन्म में माधुर्य और स्वच्छता स्वाभाविक गुण होने पर भी अन्यान्य पदार्थों के संग से उसके रस और फल में परिवतन आता है । इसी तरह सिद्धि चाहे कैसी भी सरस और हितकर हो, परन्तु आधार, पात्र रूप धारण कर्त्ता योग्य न होने के कारण वह सिद्धि पूर्व कथनानुसार सिद्धि लाभ के बदले हानि जनक हो जाती है । भगवान श्री रसेश्वर और श्री रसेश्वरी की कृपा द्वारा ही ये सिद्धियाँ प्राप्त होती है । भगवान् श्री रसेश्वर और श्री रसेश्वरी विश्व का कन्याण करें और मानव मात्र को सत्पथावलम्बी बनावें ।

"नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धि न तरेत्स आत्महा ।।

सज्जनों ! जन्म जन्मान्तर कल्प कल्पान्तर युग युगान्तर के जव प्रवल पुण्य उदय होते हैं तव जायके मनुष्य को चौरासी लाख योनी की यातना भोगने पर मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है । मनुष्य जन्म धारण करके संसार सागर को पार करने के लिए पुण्य योग से सहज सद्गुरु रूप महान् नाविक प्राप्त होते हुए भी जो मनुष्य जीवन को सफल बनाने वाले सद्गुरु की शरण में जाकर इस भव सागर से पार उतरने का प्रयत्न नहीं करता, वह आत्मघाती माना जाता है ।

सज्जनों ! जिनको कृपा कटाक्ष विना इसी भयानक संसार सागर में से पार होने के लिए दशो महाविद्याओं जैसे मातंगी, भुनेश्वरी, वगलामुखी धूमावती, त्रिपुरभैरवी, तारा, छिन्नमस्ता कालिका, कमला और त्रिपुर सुन्दरी जिनको श्री महाविद्या कहते हैं, वे सभी भी श्रीसद्गुरु के शरण और कृपा के वांछित पद देने में असमर्थ होते हैं । वैसा भारतीय धर्मशास्त्र का परम निचोड़ हैं । सद्गुरु की प्राप्ति के लिए मनुष्य में पवित्रता के साथ-साथ, सच्ची लगन भी होनी चाहिए ।

सज्जनों ! अपने प्राचीन इतिहास में जिन-जिन महर्षियों, राजाओं और महात्माओं का नाम अमर हुआ हैं, वे आज की तरह अपनी जाहिरात और प्रसिद्धि के लिए भरसक प्रयत्न नहीं करते थे । परन्तु, अपने उक्त कार्य और सच्चारित्र्य के द्वारा ही अमर हो गए हैं । राजा हरिश्चन्द्र केवल अपनी सत्य पर की अटूट श्रद्धा से, महर्षि मुद्गल और राजा रन्तिदेव अपनी दान पर की प्रीति से, जड़ भरत जी अपनी अहिंसक वृत्ति से, मतलव, वे अपने एक गुण के साधन द्वारा संसार के अतीत इतिहास में अपना नाम अमर कर गए ! सज्जनों, आप को भी चाहिए कि अपने जीवन में वैसे ही एक गुण की अटूट साधना द्वारा जीर्णारण्य स्वरूप संसार के कंटकमय मार्ग को सरल बनाने हेतु एक गुण को अवश्य सिद्ध करना चाहिए । जिस सत्कार्य के प्रभाव से आप का भी नाम भविष्य के इतिहास में अमर बनावें । अनेक प्रपंचों के द्वारा राष्ट्रीय पेन्शन पद्मभूषण, पद्मविभूषण-पद्मश्री आदि पदवियों को प्राप्त करने से कोई अमर नाम नहीं होगा ।

अतीत काल में भगवान् शंकराचार्य के शांकर भाष्य के ब्रह्मसूत्र पर व्याख्याकार वाचस्पति मिश्र ने कौन-सा राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त किया था ?

आज उनकी भामती टीका द्वारा पति-पत्नी दोनों का नाम अमर है। इतना ही नहीं पतिव्रता मदालसा अपने पुत्रों को उत्तम शिक्षा देने के निमित्त संसार में उसका नाम अमर हो गया। जटायु गीद्धराज ने अपने मित्र के प्रति कृतज्ञता और मित्रत्व का शुल्क देने के लिए सीताजी के हरण के प्रसंग पर रावण से युद्ध करके अपने देह को न्यौछावर कर दिया।

"तनु तजि तात जाहु मम धामा।
देउ काह तुम्ह पूरन कामा॥
अविरल भगति माँगि वर, गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्हीं राम॥

और संसार में नाम अमर कर दिया। वे कौन-सी युनिवर्सिटी के अन्तर्गत किस विद्या के स्नातक या महास्नातक थे ? नहीं वे अपने सच्चारित्र्य के द्वारा ही संसार में अमर हुए हैं। वैसे ही एक दान धर्म के निष्ठावान की कथा याद आती है। भगवान् सूर्यनारायण सभी जीवमात्र के पुण्य पाप के साक्षी हैं। उनके वंश में ऐसे-ऐसे दिव्य राजर्षियों का प्रादुर्भाव हुआ है कि जिन्होंने अपने पूर्वज सूर्यनारायण के वंशज होने पर भी सूर्यवंश नाम मिटा कर अपने नाम द्वारा ही वंश को विख्यात किया है। जैसे राजा इक्ष्वाकु ने अपने पुरुषार्थ और चारित्र्य के द्वारा सूर्य वंश को इक्ष्व कुवंश के नाम से घोषित किया बाद में उनके ही वंश में राजा दिलीप के पुत्र महाराज रघु ने अपने पूर्वज सूर्य और इक्ष्वाकु दोनों के नाम मिटाकर अपने ही नाम से वंश को विख्यात किया। उनके बाद वैसा पुरुषार्थ करके अपने नाम से वंश चलाने की किसी धर्मनिष्ठ राजा महाराजा की प्रतिष्ठा आज तक संसार में सुनने में या पढ़ने में नहीं आयी।

वही महाराजा रघु के आदर्शमय कथानक के अवलोकन से आज भी अयोध्यावासी महान् गौरव को धारण करते हैं। संत तुलसीदास जी भी रामचरित मानस के आलेखन करते समय रघु को अवश्य याद करते हैं जैसे—

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाइ वरु वचन न जाई।

इस चौपाई द्वारा वर्णन भगवान् राम का करते हैं। परन्तु भगवान् राम का परिचय देते समय उनके पिता दशरथ को याद नहीं करते परन्तु उनके प्रपितामह रघु को याद करते हैं। क्या कारण है ? शिष्य धर्म के परमादर्श महर्षि कौत्स महर्षि वरतन्तु से सम्पूर्ण अंग उपाङ्गों के सहित यानी चौदहों विद्याओं के सहित वेद का सम्पूर्ण अध्ययन करके पूर्ण हो गए। गुरु की आज्ञा पाकर अपने घर जाने की इच्छा की। गुरुजी को कहा, मैं स्नातक होकर घर जाना चाहता हूँ। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें। महर्षि वरतन्तु कौत्स की सेवा आदि से अत्यन्त सन्तुष्ट थे। उन्होंने कहा जाओ बेटा आप का कल्याण हो और तुमने मेरी बहुत सेवा की है उसी के उपहार में प्राप्त सभी विद्यायें तुम्हे कल्प वृक्ष की तरह फलवती होगी। परन्तु कौत्स को गुरु दक्षिणा दिए बिना जाना मन में खटका, बार-बार गुरु से आग्रह करने पर वरतन्तु महर्षि ने कुछ क्षोभ करते हुए कहा कि मुझसे तुमने चौदह विद्यायें प्राप्त की है। इसी से मुझे

चौदह विद्याओं के बदले में चौदह कोटी सुवर्ण मुद्राएं चाहिए। बस! अब क्या था, कौत्स गुरु को बन्दन करके राजा रघु की राजधानी अयोध्या की ओर चल पड़ा। महाराजा रघु के पास पहुँचकर देखा तो राजा सर्वस्व दक्षिणात्मक यज्ञ करके मिट्टी के पात्रों से अपना सभी कार्य कर रहे थे। क्योंकि सुवर्ण आदि यज्ञान्त दक्षिणा तक में सभी समाप्त कर दिया था। रघु ने कहा महाराज! आप कुछ देरी से आए। ऐसा कहने पर भी कौत्स का यथाविधि सत्कार किया और आने का कारण पूछा। तभी कौत्स ब्रह्मचारी कहते हैं। मैं गुरु दक्षिणार्थी होकर आपके पास आया था। परन्तु, यहाँ पर देखने से ज्ञात होता है कि मेरा कार्य सम्पन्न होना असम्भव है। ऋषिकुमार चलने का विचार कर रहे हैं। राजा रघु उनके पावन चरणों में गिरकर प्रार्थना करता है कि मुझ दीन पर कृपा करके हमारे से ही आपकी गुरुदक्षिणा की जो माँग की है, उसकी पूर्ति मेरे द्वारा ही करायें। क्योंकि, इस महायज्ञ में सभी से कर लिया गया है, परन्तु; उत्तर दिशा के स्वामी श्रीधनपतिकुबेर भण्डारी से कर नहीं लिया। उसकी वसूलात अभी बाकी है। मैं आज ही उस पर कर वसूलात के लिए पत्र के साथ दूत भेजता हूँ। यदि हमारे कहने से उन्होंने कर नहीं भेजा तो मैं उनके ऊपर चढ़ाई करके युद्ध के द्वारा कर वसूलात कर दूँगा और आपकी गुरुदक्षिणा की यातना पूर्ण करने का भरसक प्रयत्न किया जायगा। सर्वस्व दक्षिणात्मक महायोग पूर्ण होती है और दूसरे ही दिन प्रभात में मेरे आगे आपका यही कार्य आता है। मानो, आपके रूप में साक्षात् यज्ञ नारायण ही मेरी परीक्षा के लिए आए हो, वैसा भाव मेरे हृदय में प्रकट हो रहा है। दास पर कृपा करके मेरा आतिथ्य स्वीकार करें। राजा रघु ने महर्षि मुग्दल के और राजा रन्ति देवके समान कौत्स का आदर-पूर्वक सन्मान किया। महर्षि मुग्दल के आतिथ्य के सामने आज भी किसी महर्षि का आतिथ्य धर्म के सम्बन्ध में समता नहीं रखता। यहाँ पर महर्षि मुग्दल की कथा आपको सुनाते हैं।

सज्जनों! कुरुक्षेत्र में मुद्‌गल नामक ऋषि पूर्वकाल में निवास करते थे। वे बड़े धर्मात्मा, जितेन्द्रिय भगवद्भक्त एवं सत्यवक्ता थे। किसी की भी निन्दा नहीं करते थे। ये शिलोञ्छवृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करते थे। शिल उसको कहते हैं कि धान संग्रह के समय पर खेत के धान को साफ करने की जगह को गुजराती भाषा में खला कहा जाता है। उसी खले में से धान लेने के बाद में पड़े अन्न के कणों को संग्रह कर लेना और ऊंछ बाजार में बिखरे हुए धान्य के कणों को संग्रह करना। उसी प्रकार यह मुद्‌गल ऋषि १५ दिनों में एक द्रोण धान्य जो करीब ३४ सेर के बराबर होता है, इकट्ठा कर लेते थे। १५ दिनों पर दर्श-पौर्णमास योग किया करते थे। यज्ञों में देवता और अतिथियों को देने से जो अन्न बचता था, उसी से अपने परिवार सहित निर्वाह किया करते थे। जैसे वे धर्मात्मा ब्राह्मण स्वयं थे, वैसे ही उनकी धर्मपत्नी और सन्तानें भी थीं मुद्‌गलजी सपरिवार महीने में केवल दो ही बार योग किया करते थे। सो भी अतिथि अभ्यागतों को भोजन कराने के बाद। कहते हैं कि उनका प्रभाव ऐसा था कि प्रत्येक पर्व के दिन साक्षात् देवराज इन्द्र देवताओं के सहित उनके यज्ञ में आकर अपना-अपना भाग ग्रहण करते थे। इस प्रकार मुनि वृत्त से रहना और प्रसन्न चित्त से अतिथियों को अन्न देना, यही उनके जीवन का व्रत था।

सज्जनों! मुनि के इस व्रत की ख्याति बहुत दूर तक फैल चुकी थी। एक दिन उसकी कीर्ति कथा को सुनकर दुर्वासा ऋषि के मन में विचार आया कि इन महर्षि मुद्‌गल की परीक्षा अवश्य करनी चाहिए। दुर्वासा महाराज जहाँ तहाँ व्रतशील उत्तम पुरुषों को व्रत में पक्का करने के लिए ही क्रोधावेश में घूमा करते थे।

वे एक दिन नंग-धड़ंग, पागलों का-सा वेष बनाये, मुन्ड-मुड़ाये, कटु वचन कहते हुए वहाँ आ पहुँचे। आते ही बोले—'प्रियवर।' आपको मालूम होना चाहिए कि मैं भोजन की इच्छा से आया हूँ उस दिन पूर्णिमा का दिवस था। मुद्गल ने आदर सत्कार के साथ ऋषि की अभ्यर्थना करके उन्हें भोजन के लिए बैठाया। उन्होंने भूखे अतिथि जो अपने द्वार पर आये थे उनको प्रेमपूर्वक बड़ी श्रद्धा के साथ परोस-कर जिमाया। मुनि भूखे तो थे ही, श्रद्धा से प्राप्त हुआ वह अन्न उन्हें बड़ा सरस भी लगा। वे बात की बात में रसोई में बना हुआ सब कुछ जीम गए। बचा खुचा शरीर पर लेप करके और जूठे अन्न को भी शरीर पर लपेट कर वे जिधर से आए थे उधर ही निकल गए।

सज्जनों! मुद्गल सपरिवार भूखे ही रहे। यों प्रत्येक पर्व पर दुर्वासा आते और भोजन करके चले जाते। पन्द्रह दिनों तक कटे हुए खेतों में बिखरे दानों को वे बीनते और स्वयं निराहार रहकर प्रत्येक पन्द्रहवें दिन वे उसे दुर्वासा ऋषि को अर्पण कर देते। स्त्री-पुत्र ने भी उनका साथ दिया। भूख से उनके मन में तनिक भी विचार या खेद उत्पन्न नहीं हुआ। क्रोध-ईर्ष्या या अनादर का भी भाव नहीं आया। वे ज्यों के त्यों शान्त बने रहे। इसी प्रकार वे लगातार तीन महीने में छः बार प्रत्येक पर्व पर आए। पन्द्रह दिनों में एकबार भोजन करनेवाला तपस्वी कुटुम्ब लगातार तीन महीने तक भूखा रहा, परन्तु; किसी के भी मन में दुःख, क्रोध क्षोभ या अपमान का विकार नहीं हुआ। दुर्वासा ने हर एक बार उनके चित्त को शान्त और निर्मल पाया।

सज्जनों! दुर्वासा इस प्रकार के इनके धैर्य को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने मुनि मुद्गल से कहा—मुझे इस संसार में तुम्हारे समान कोई दाता नहीं मिला है।

ईर्ष्या तुम्हें छू भी नहीं गयी है। भूख, बड़े-बड़े धार्मिक लोगों को भी विचारों से डिगा देती है और धैर्य का हरण कर लेती है। जीभ तो रसना ही ठहरी, वह सदा रस का स्वाद लेने वाली है। मन तो इतना चंचल है कि इसको वश में करना, अत्यन्त कठिन है। देवता भी तुम्हारे दान की महिमा गाकर सर्वत्र घोषणा करेंगे। महर्षि दुर्वासा यों कह ही रहे थे कि देवदूत विमान लेकर मुद्गल के पास आए। देवदूत ने कहा—देव! आप महापुण्यवान् हैं, सशरीर स्वर्ग पधारें।

सज्जनों! देवदूत की बात सुनकर महर्षि ने उससे कहा—हे देवदूत! सत्पुरुषों में सात पग चलने से ही मित्रता हो जाती है। अतः मैं जो आपसे पूछूँ, उसके उत्तर में जो सत्य और हितकर हो वही बतलाएँ। मैं आपकी बात सुनने के बाद ही अपना कर्त्तव्य निश्चित करूँगा। देवदूत! मेरा प्रश्न यह है कि स्वर्ग के क्या सुख हैं और क्या दुःख हैं?

सज्जनों! देवदूत ने महर्षि मुद्गल के उत्तर में स्वर्ग लोक एवं उसके भी ऊपर के भोग मय लोगों के सुखों का वर्णन किया। तत्पश्चात् वहाँ का सबसे बड़ा दोष यह बतलाया कि 'वहाँ से एक दिन पतन होता है'।

'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'

ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोकों में पतन का भय जीव को सदा बना ही रहता है। वे कहने लगे कि सुखद ऐश्वर्य का उपभोग करके उससे निम्न स्थानों में गिरनेवाले प्राणियों को जो असंतोष होता है, उसका वर्णन करना कठिन है।

सज्जनों! यह सुनकर महर्षि मुद्गल ने उत्तर में स्वर्ग लोक आदि के साथ देवदूतों को विधि-पूर्वक नमस्कार किया तथा उन्हें अत्यन्त प्रेम से यह कहकर लौटा दिया।

"यत्र गत्वा न शोचन्ति न व्यथयन्ति न चरन्ति वा।
तदहं स्थानमात्यन्तं मार्गयिष्यामि केवलम् ॥"
(म. भा. वनपर्व २६१।४४)

हे देवदूत। मैं तो उस विनाश रहित परम धाम को ही प्राप्त करूँगा, जिसे प्राप्त कर लेने पर शोक व्यथा और दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है और परमानन्द की प्राप्ति होती है। देवदूत उनसे यह बात सुनकर उनकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करता हुआ लौट गया एवं मुनि मुद्गल, स्तुति-निन्दा, स्वर्ण तथा मिट्टी में समभाव रखते हुए ज्ञान-वैराग्य तथा भगवद्भक्ति के साधन से अविनाशी भगवद्धाम को प्राप्त हुए।

सज्जनों! वैसे ही महाराज की प्रार्थना से महर्षि कौत्स द्रवित होकर तीन दिन राजा रघु की अग्निशाला में निवास करते रहे। महाराज ने अनुरोध किया कि अयोध्या से अतिथि निराश लौट गया, इन बातों का अपवाद रघु को नहीं लगना चाहिए। कौत्स ने सम्राट रघु के अनुरोध को स्वीकार कर लिया और उसी संध्या को महाराज ने अपने मंत्री को आदेश दिया मेरा रथ सज्जित करो। आज अतिथि अपूर्ण काम अयोध्या में है। इसी से रघुराज सदन नहीं जा सकेगा। मैं रथ में शयन करूँगा।

यज्ञ में पृथ्वी के सब नरेशों ने दान दिया है। मंत्री ने केवल सूचना ही दी। किसी से दुबारा, अनवसर कर लेने का अन्याय, सम्राट् नहीं करेंगे। इतना विश्वास मंत्री को था। लोकपाल कुबेर भले ही देवता हैं, परन्तु उनकी अलंकापुरी पृथ्वी पर है। सम्राट् ने मंत्री का समाधान किया। जो पृथ्वी पर रहता है, उसे पृथ्वीपालक को कर देना ही चाहिए। अलकाधिपति ने आज तक कर नहीं दिया है, तो धनाधीश पर आक्रमण का संकल्प अयोध्या के रक्षकों को नहीं करना पड़ता। इतना कहकर रघु ने अपने युद्ध के लिए सज्जित रथ में निवास और विश्राम किया। प्रातः काल होते ही कोषाध्यक्ष ने जल्दी-जल्दी रघु के पास आकर कहा कि देव! धनागार स्वर्ण मुद्राओं से भरा हुआ है।

धनागार पूर्ण होने के बाद भी धनागार से बाहर तक समुद्र के तरंगों की तरह धन तरंगायित हो रहा है। अब उसको कहाँ रखा जाय? तब राजा रघु आनन्द विभोर होते हुए महर्षि कौत्स से कहते हैं कि हे ब्रह्मन्! यह सब द्रव्य आप के ही निमित्त आया है और आप की कृपा से ही आया है। इस पर मेरा लेशमात्र भी अधिकार नहीं है। कौत्स कहते हैं कि हे राजन्! जरूरत से अधिक लेने वाला स्तेन याने चोर है। वैसा शास्त्रों में निर्दिष्ट है। मैं चौदह करोड़ मुद्राओं से अधिक किंचिन्मात्र भी ग्रहण नहीं करूँगा। क्योंकि इससे ज्यादा लेने का मेरा अधिकार नहीं। राजा रघु कहते हैं कि आप के निमित्त आने के कारण इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं। जैसे खेल-रमत के मैदान में फुटबाल को इधर-उधर फेंका जाता है, वैसी दशा यहाँ पर कुबेर से प्राप्त हो रही है। देनेवाला सर्वस्वदानी है। लेनेवाला माँग से अधिक जो कुछ है, उसका सर्वस्व त्यागी है। अब धन आ गया तो त्यागी और दानी को परस्पर दान और त्याग का युद्ध खेलने का प्रसंग खड़ा हो गया। अन्त में कौत्स ने हार कर कहा कि मैं मेरी चौदह करोड़ सुवर्ण मुद्रायें ले लेता हूँ, अब शेष बचा हुआ द्रव्य आप मेरी आज्ञा से ब्राह्मणों को दान में दे देवें। वैसा किया गया। विशाल हृदय वाले महर्षि कौत्स के सदृश निष्ठावान् ब्राह्मण आज के युग में प्राप्त होना कठिन है। क्योंकि जिनके हृदय में लोभ ने आसन नहीं जमाया। इस पर एक कथा याद आती है—एक सेठ के पास पर्याप्त धन था। फिर भी, उसके लोभ की सीमा नहीं थी। उसकी सदा यही इच्छा रहती थी

कि मेरे समान धनी कोई दुनिया में न हो। एक दिन कोई योगी उनके घर पहुँचा। सेठ ने सेवा करके उसे प्रसन्न किया। योगी ने उसे कोई वरदान माँगने को कहा। सेठ बोला मैं जो छूलूँ वह सोना हो जाये। योगी ने कहा, जाओ वैसा ही होगा। सवेरे उठकर सेठ ने जैसे दातून को स्पर्श किया वह सोना हो गया। कूचा नही बनने से सेठ जी दातून नहीं कर सके। नदी पर नहाने को गए, जल का स्पर्श करते ही जल सोना हो गया। इसी से वे नहाये विना रह गए। घर आकर भोजन करने बैठे तो स्पर्श होते ही भोजन भी सोना हो गया। इसी से भूखा रहना पड़ा। बच्चे को लेकर खेलाने लगे तो वह भी सोना हो गया। अब वह चिल्ला कर रोने लगा। इतने में वह योगी आ पहुँचा और उसने पूछा, रोते क्यों हो ? उसने कहा मुझे वरदान नहीं चाहिए। मुझ पर कृपा करिए। तब योगी ने वह वरदान वापस ले लिया। जिससे उसका संकट कटा। कौत्स के हृदय में सद्विद्या ने निवास किया था। अत: वह ताज के जैसे केवल उदर भरणी नहीं होने के कारण धनपति कुबेर को भी संचित बनाकर ब्राह्मण पुत्र की आवश्यकता से भी अधिक द्रव्य रघु के धनागार में वर्षाया। यह है श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व की परमोच्चता का ज्वलन्त उदाहरण। यह सुन कर कोई एक पण्डित से किसी मनुष्य ने प्रश्न किया कि विद्वान् लोग धनिकों के घर मिलने क्यों नहीं जाते ? इसके कारण क्या हैं ? पण्डित जी ने उत्तर दिया विद्वान् को धन जैसी जड़ वस्तु की अधिक जरूरत पड़ती है, किन्तु धनिकों को ज्ञान जैसी उत्तम वस्तु की इच्छा भी नहीं होती। इसी से वे उनके पास नहीं जाते। इसलिए इनके उद्धार हेतु विद्वानों को धनिकों के घर जाना पड़ता है। इस प्रकार दान धर्म के निष्ठावान् महाराजा रघु से गुरु दक्षिणा को प्राप्त करके महर्षि के पुनीत चरणों में गुरुदक्षिणा समर्पित की और अपने आत्मा को धन्य समझकर गुरु से आशीर्वाद प्राप्त करके अपने घर गया।

ज्ञान-धर्म की ऐसी परमनिष्ठा के कारण महाराजा रघु का नाम आज संसार में अमर हो गया। सर्वस्व दक्षिणात्मक महायज्ञ के करने वाले रघु ने अपना सर्वस्व जैसे यज्ञ में दान में दे दिया, वैसे ही यज्ञ पूर्ण होने पर भी अपना दानीत्व कायम स्थिर करने के हेतु रघु ने महान् पुरुषार्थ से कौत्स महर्षि की गुरुदक्षिणा का साधन किया। यह है सर्वस्व दान की परमोत्कृष्टता—

"नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरू कर्ण धारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धि न तरेत्स आत्महा ॥

सज्जनों ! यह मनुष्य शरीर समस्त शुभ फलों की प्राप्ति का मूल है और अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी गुरु की कृपा के द्वारा अत्यन्त सुलभ हो गया है। इस संसार सागर से पार होने के लिए यह मजबूत नौका है। जिनके शरण मात्र से ही गुरुदेव केवट [नाविक] बनकर पतवार का संचालन करने लगते हैं और स्मरण मात्र स ही मैं अनुकूल वायु के रूप में इसके लक्ष्य की ओर बढ़ने लगता हूँ। इतनी सुविधा होने पर भी जो मनुष्य इस शरीर के द्वारा संसार सागर से पार होने का प्रयत्न नहीं करता वह तो अपने ही हाथों से अपने आत्मा का हनन (अधःपतन) कर रहा है।

सज्जनों ! जब मनुष्य दोष-दर्शन के कारण कर्मों से उद्विग्न और विरक्त हो जाय तब जितेन्द्रिय होकर वह योग में स्थित हो जाय और अभ्यास, आत्मानुसंधान के द्वारा अपना मन मुझ परमात्मा में निश्चल रूप धारण करे तो इस भवसागर को पार करके सहज ही भगवत्स्वरूप में मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

"यत्र गत्वा न शोचन्ति न व्यथयन्ति न चरन्ति वा ।
तदहं स्थानमात्यन्तं मार्गयिष्यामि केवलम् ॥"
(म. भा. वनपर्व २६१।४४)

हे देवदूत । मैं तो उस विनाश रहित परम धाम को ही प्राप्त करूँगा, जिसे प्राप्त कर लेने पर शोक व्यथा और दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है और परमानन्द की प्राप्ति होती है । देवदूत उनसे यह बात सुनकर उनकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करता हुआ लौट गया एवं मुनि मुद्‌गल, स्तुति-निन्दा, स्वर्ण तथा मिट्टी में समभाव रखते हुए ज्ञान-वैराग्य तथा भगवद्भक्ति के साधन से अविनाशी भगवद्धाम को प्राप्त हुए ।

सज्जनों ! वैसे ही महाराज की प्रार्थना से महर्षि कौत्स द्रवित होकर तीन दिन राजा रघु की अग्निशाला में निवास करते रहे । महाराज ने अनुरोध किया कि अयोध्या से अतिथि निराश लौट गया, इन बातों का अपवाद रघु को नहीं लगना चाहिए । कौत्स ने सम्राट रघु के अनुरोध को स्वीकार कर लिया और उसी संध्या को महाराज ने अपने मंत्री को आदेश दिया मेरा रथ सज्जित करो । आज अतिथि अपूर्ण काम अयोध्या में है । इसी से रघुराज सदन नहीं जा सकेगा । मैं रथ में शयन करूँगा ।

यज्ञ में पृथ्वी के सब नरेशों ने दान दिया है । मंत्री ने केवल सूचना ही दी । किसी से दुबारा, अनवसर कर लेने का अन्याय, सम्राट् नहीं करेंगे । इतना विश्वास मंत्री को था । लोकपाल कुबेर भले ही देवता हैं, परन्तु उनकी अलकापुरी पृथ्वी पर है । सम्राट् ने मंत्री का समाधान किया । जो पृथ्वी पर रहता है, उसे पृथ्वीपालक को कर देना ही चाहिए । अलकाधिपति ने आज तक कर नहीं दिया है, तो धनाधीश पर आक्रमण का संकल्प अयोध्या के रक्षकों को नहीं करना पड़ता । इतना कहकर रघु ने अपने युद्ध के लिए सज्जित रथ में निवास और विश्राम किया । प्रातः काल होते ही कोषाध्यक्ष ने जल्दी-जल्दी रघु के पास आकर कहा कि देव ! धनागार स्वर्ण मुद्राओं से भरा हुआ है ।

धनागार पूर्ण होने के बाद भी धनागार से बाहर तक समुद्र के तरंगों की तरह धन तरंगायित हो रहा है । अब उसको कहाँ रखा जाय ? तब राजा रघु आनन्द विभोर होते हुए महर्षि कौत्स से कहते हैं कि हे ब्रह्मन् ! यह सब द्रव्य आप के ही निमित्त आया है और आप की कृपा से ही आया है । इस पर मेरा लेशमात्र भी अधिकार नहीं है । कौत्स कहते हैं कि हे राजन् ! जरूरत से अधिक लेने वाला स्तेन याने चोर है । वैसा शास्त्रों में निर्दिष्ट है । मैं चौदह करोड़ मुद्राओं से अधिक किंचिन्मात्र भी ग्रहण नहीं करूँगा । क्योंकि इससे ज्यादा लेने का मेरा अधिकार नहीं । राजा रघु कहते हैं कि आप के निमित्त आने के कारण इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं । जैसे खेल-रमत के मैदान में फुटबाल को इधर-उधर फेंका जाता है, वैसी दशा यहाँ पर कुबेर से प्राप्त हो रही है । देनेवाला सर्वस्वदानी है । लेनेवाला माँग से अधिक जो कुछ है, उसका सर्वस्व त्यागी है । अब धन आ गया तो त्यागी और दानी को परस्पर दान और त्याग का युद्ध खेलने का प्रसंग खड़ा हो गया । अन्त में कौत्स ने हार कर कहा कि मैं मेरी चौदह करोड़ सुवर्ण मुद्रायें ले लेता हूँ, अब शेष बचा हुआ द्रव्य आप मेरी आज्ञा से ब्राह्मणों को दान में दे देवें । वैसा किया गया । विशाल हृदय वाले महर्षि कौत्स के सदृश निष्ठावान् ब्राह्मण आज के युग में प्राप्त होना कठिन है । क्योंकि जिनके हृदय में लोभ ने आसन नहीं जमाया । इस पर एक कथा याद आती है—एक सेठ के पास पर्याप्त धन था । फिर भी, उसके लोभ की सीमा नहीं थी । उसकी सदा यही इच्छा रहती थी

कि मेरे समान धनी कोई दुनिया में न हो। एक दिन कोई योगी उनके घर पहुँचा। सेठ ने सेवा करके उसे प्रसन्न किया। योगी ने उसे कोई वरदान माँगने को कहा। सेठ बोला मैं जो छूलूँ वह सोना हो जाये। योगी ने कहा, जाओ वैसा ही होगा। सवेरे उठकर सेठ ने जैसे दातून को स्पर्श किया वह सोना हो गया। कूचा नही वनने से सेठ जी दातून नहीं कर सके। नदी पर नहाने को गए, जल का स्पर्श करते ही जल सोना हो गया। इसी से वे नहाये विना रह गए। घर आकर भोजन करने बैठे तो स्पर्श होते ही भोजन भी सोना हो गया। इसी से भूखा रहना पड़ा। वच्चे को लेकर खेलाने लगे तो वह भी सोना हो गया। अब वह चिल्ला कर रोने लगा। इतने में वह योगी आ पहुँचा और उसने पूछा, रोते क्यों हो ? उसने कहा मुझे वरदान नहीं चाहिए। मुझ पर कृपा करिए। तव योगी ने वह वरदान वापस ले लिया। जिससे उसका संकट कटा। कौत्स के हृदय में सद्विद्या ने निवास किया था। अतः वह ताज के जैसे केवल उदर भरणी नहीं होने के कारण धनपति कुबेर को भी संचित वनाकर ब्राह्मण पुत्र की आवश्यकता से भी अधिक द्रव्य रघु के धनागार में बर्षाया। यह है श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व की परमोच्चता का ज्वलन्त उदाहरण। यह सुन कर कोई एक पण्डित से किसी मनुष्य ने प्रश्न किया कि विद्वान् लोग धनिकों के घर मिलने क्यों नहीं जाते ? इसके कारण क्या हैं ? पण्डित जी ने उत्तर दिया विद्वान् को धन जैसी जड़ वस्तु की अधिक जरूरत पड़ती है, किन्तु धनिकों को ज्ञान जैसी उत्तम वस्तु की इच्छा भी नहीं होती। इसी से वे उनके पास नहीं जाते। इसलिए इनके उद्धार हेतु विद्वानों को धनिकों के घर जाना पड़ता है। इस प्रकार दान धर्म के निष्ठावान् महाराजा रघु से गुरु दक्षिणा को प्राप्त करके महर्षि के पुनीत चरणों में गुरुदक्षिणा समर्पित की और अपने आत्मा को धन्य समझकर गुरु से आशीर्वाद प्राप्त करके अपने घर गया।

ज्ञान-धर्म की ऐसी परमनिष्ठा के कारण महाराजा रघु का नाम आज संसार में अमर हो गया। सर्वस्व दक्षिणात्मक महायज्ञ के करने वाले रघु ने अपना सर्वस्व जैसे यज्ञ में दान में दे दिया, वैसे ही यज्ञ पूर्ण होने पर भी अपना दानीत्व कायम स्थिर करने के हेतु रघु ने महान् पुरुषार्थ से कौत्स महर्षि की गुरुदक्षिणा का साधन किया। यह है सर्वस्व दान की परमोत्कृष्टता—

"नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥

सज्जनों ! यह मनुष्य शरीर समस्त शुभ फलों की प्राप्ति का मूल है और अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी गुरु की कृपा के द्वारा अत्यन्त सुलभ हो गया है। इस संसार सागर से पार होने के लिए यह मजबूत नौका है। जिनके शरण मात्र से ही गुरुदेव केवट [नाविक] बनकर पतवार का संचालन करने लगते हैं और स्मरण मात्र स ही मैं अनुकूल वायु के रूप में इसके लक्ष्य की ओर बढ़ने लगता हूँ। इतनी सुविधा होने पर भी जो मनुष्य इस शरीर के द्वारा संसार सागर से पार होने का प्रयत्न नहीं करता वह तो अपने ही हाथों से अपने आत्मा का हनन (अधःपतन) कर रहा है।

सज्जनों ! जब मनुष्य दोष-दर्शन के कारण कर्मों से उद्विग्न और विरक्त हो जाय तब जितेन्द्रिय होकर वह योग में स्थित हो जाय और अभ्यास, आत्मानुसंधान के द्वारा अपना मन मुझ परमात्मा में निश्चल रूप धारण करे तो इस भवसागर को पार करके सहज ही भगवत्स्वरूप में मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

सज्जनों ! चौरासी लक्ष योनि से महाचक्र में घूमता हुआ यह जीवात्मा अनेक जन्मों के अन्त में मनुष्य शरीर प्राप्त करता है। वहाँ पर सत्कर्मो के द्वारा शूद्र से वैश्य, वैश्य से क्षत्रिय, क्षत्रिय से ब्राह्मण, ब्राह्मणों में भी उच्च कुल में जन्म धारण करना वह अनन्त पुण्य कर्मों के संचय द्वारा ही संभव हैं।

सज्जनों ! पायों के बिना दीवालें नहीं बनती, मस्तक के सिवा शरीर का परिचय प्राप्त नहीं हो सकता। इससे रहित जीवन शुष्क माना जाता है। वैसा यदि आप समझते हैं तो हमारी बात सुने। मनुष्य जन्म धारण करता है और मरता है, परन्तु उसके पाये में ब्राह्मण नहीं है। इसी से वह पशु की तरह जन्म धारण करता है। बड़ा होता है और पशु की तरह हाय-हाय करता हुआ मर जाता है। २५-५० वर्ष तक ठिकाने के लिए बनाए हुए मकान के पाए पर बनाने के अवसर पर बहुत ध्यान दिया जाता है, परन्तु जिसके द्वारा परमात्मा तक पहुँच हो सकती है। वैसा उत्तम मानव देह को प्राप्त करके उसके पाये मजबूत करने के लिए प्रयत्न न किया जाय, वह कोई कम अज्ञान नहीं है। पाठशाला में ज्ञान को ज्ञान कहते हो, मुक्ति का साधन मानते हो तो पढ़ा हुआ प्रहलाद को पूछो श्रीमद्भागवत के सप्तम-स्कन्ध में प्रहलाद ने बालकों को जो बोध दिया है वह सुननेमात्र से ही आप के विद्या के घमण्ड टूट जाएगें। फूट जाएगें। वे घमण्ड कहीं पर भी आप को दिखेगें नहीं।

सज्जनों ! अब दूसरी बात करता हूँ। प्रजा का जो मस्तक है वह ब्राह्मण है। मस्तक विना शरीर का परिचय पाना अत्यन्त मुश्किल है। अभी भारतवर्ष की प्रजा का मस्तक गुम हो गया है। अभी केवल भारत की प्रजा का मस्तक रहित कबन्ध याने केवल धड़ ही इधर-उधर घूम रहा है। भारतीय प्रजा को अभी देखते हुए होता है कि सुन्दर पोषाक में अलंकृत ये लोग कौन हैं ? सहस्त्रों वर्षों से इस प्रकार सड़ रहे हैं, परन्तु अभी तक बैठने की ताकत नहीं। पढ़कर कुछ सीखे हो तो बकवाद से विशेष कुछ नहीं। हुल्लड़ आदि तूफानों में अपनी स्त्रियों की भी रक्षा करने में असमर्थ युवा उत्पन्न हुए हैं। इनको मर्द बनाने वाला सद्गुरु ब्राह्मण है। संसार रूपी बगीचे पर माली नहीं। उसका शोक भी स्वल्प होता है।

चमन में खड़े हैं औ गुल भी खिले हैं।
इसको सजाने का ढंग आता नहीं है।
चमन के माली का कहीं पता नहीं है।
ढूढ़े तो उन्हें ढूढ़े कहाँ पर।
संकेत दिया परवाने ने मुझे।
जिसे ढूढ़े तो है वही रक्षक।
ब्राह्मण साधु इस चमन के है। मालिक ।।

सज्जनों ! अब तीसरी बात कहता हूँ वह ऐसी है कि रस रहित जीवन सूखा रहे चारों ओर नजर करके देखो ! हैं कहीं पर जीवन रस ? मोटर में बैठकर घूमना है, वह भी मटकों से जल रहा है, बड़े हुद्दे पर आडम्बर से बैठा हुआ भी मारा या मरेगा बस भय से उसके मत्थे पर भय तुल रहा है। सुशीला बधु उनको घृत दलुत रोटियाँ देती हैं। परन्तु यह सूखा मनुष्य .मात्र दो-तीन रोटियाँ खा सकता है और आफत से फँसे अनेक लोग आत्महत्या कर देते हैं।

उनको मत घबराना, मैं खड़ा हूँ, वैसा कहने वाला कोई नहीं है। विधवाओं को एक आपत्ति से मुक्त करने और दूसरी आपत्ति में फसाने का निर्देश दिया जाता है, परन्तु, मानव के अवतार में इन्द्र का सुख तिनके के समान तुच्छ है। वैसा कहनेवाला कोई नहीं। तात्पर्य यह है कि जीवन-रस रहित शुष्क मनुष्यों में जीवन-रस की पूर्ति करनेवाला ब्राह्मण नहीं।

सज्जनों! अपने में से बहुत से लोग ब्राह्मणों से त्रसित हैं। वह बात मुझसे अज्ञात नहीं, परन्तु; घर बनानेवाले को मिट्टी पत्थर से त्रसित होना योग्य नहीं है। वैसे भी मजबूत दरवाजे होने पर भी अन्दर साकल का नहीं होना दरवाजा को निकम्मा बना देता है। वैसे प्रत्येक देश में ब्राह्मण लोग अगर ब्राह्मण जैसे धर्म के स्नातक पादरियों फकीरों औलिया आदि दरवाजे की साँकल रूप है। साँकल समाज को नियम में रखने वाली है। जैसे म्युनिसिपालीटी के बिना कचरा कूड़ा के ढग जहाँ तहाँ दुर्गन्ध फैलाते हैं वैसे ही ब्राह्मणों के बिना मानसिक कचरा-कूड़े के ढेर जहाँ तहाँ, दुर्गन्ध फैलाते हैं। वैद्यों डाक्टरों हकीमों के पास, शक्कर या गुड़ की पुड़िया नहीं है। परन्तु, कड़वे स्वाद से भरी हुई औषधियाँ हैं। कड़वी दवाएँ पसन्द नहीं होती परन्तु, सुखकर होने के कारण खानी पीनी पड़ती हैं। वैसे ब्राह्मणों के प्रति अभाव होने पर भी उनका समागम सुखकर होने से सम्मान करने योग्य है। जो ब्राह्मण होने पर भी ब्राह्मण धर्म से युक्त नहीं उनकी सिफारस तो मैं नहीं करता। परन्तु जो कुछ ब्राह्मण हैं उनकी यह विनती है। यह बात लो समझने के लिए श्री मद्भागवत १०।७४, में पाण्डवों के वहाँ किए गए राजसूय यज्ञ का प्रसंग है। उसी समय वहाँ पर अनेक ब्राह्मण आए हैं।

सज्जनों! जरा शांति से विचारें। यह भरत खण्ड ब्राह्मणों का देश है। भारतवर्ष के गाँवों में ब्राह्मण बसते हैं।

और ब्राह्मण की आज्ञानुसार क्षत्रिय वैश्य और शूद्र आदि कार्य करते हैं और अपना व्यवहार चलाते हैं और क्षत्रिय और वैश्य भी उपनयन के अधिकारी और ब्राह्मण के समान धर्माचरण करते और करवाते हैं।

श्रीमद्भागवत में 'ब्रह्मवर्चसं हित्वा' आदि शब्दों से शिशुपाल कहता है कि—श्रीकृष्ण ने ब्रह्म तेज का त्याग करके समुद्र के मध्य द्वारिका में वास किया। इसी से क्षत्रियों और वैश्यों के पास भी ब्रह्म तेज था।

शवरी-धर्म व्याध-गणिका आदि शूद्र भी ब्राह्मणों के आश्रम में रहते थे।

सज्जनों। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं, गुणकर्मविभागशः।

चातुर्वर्ण्य संसार मेरा ही सर्जित है। भारतीय संसार का इतिहासानुभव कहता है कि प्रजा देह का मस्तक ब्राह्मण है। क्षत्रिय बाहु है। वैश्य ऊरु है और शूद्र पैर हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः—कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः—पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
पुरुषसूक्त यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा

सज्जनों ! जिस तरह मस्तक रहित धड़ के निर्णय से व्यक्ति का निर्णय नहीं हो सकता, वैसे ही ब्राह्मण रहित हिन्दुओं की जानकारी नहीं हो सकती। संसार कहता है कि भारत का विद्या कोषाध्यक्ष ब्राह्मण हैं।

भारत का शक्ति कोषाध्यक्ष क्षत्रिय है।
भारत का धन धान्य कोषाध्यक्ष वैश्य है।
भारत का सेवा कोषाध्यक्ष शूद्र है।
मतलब ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र क्रमशः
शिक्षक-रक्षक-पोषक और सेवक के रूप में कहे गए हैं।

वसिष्ठ और विश्वामित्र ने श्रीराम को तैयार किया। पाण्डवों को द्रोणाचार्य ने, श्रीकृष्ण वलदेव को सांदिपनो ने, कर्ण को परशुराम ने, चन्द्रगुप्त को चाणक्य ने तैयार किया। ब्राह्मणों के गुरूकुल अस्त हुए, उसी के साथ ही भारत के सुख सम्मान भी अस्त हुए। जहाँ तक ब्राह्मण गुरू थे वहाँ तक भारतवर्ष का कुरूक्षेत्र धर्म क्षेत्र था, वहाँ तक भारत का मनुष्य धर्म वर्णी था, भारत का क्षत्रिय संयमशील था। भारत का वैश्य सत्यनिष्ठा था। भारत का शूद्र सेवाभावी था। भारतवर्ष की राज्य सभाओं में ऋषिवर आते थे तब राज राजेन्द्र भी सिंहासन से उठकर अपना आसन खाली करके ऋषिवरों को देते थे और स्वयं उनकी सेवा में खड़े हो जाते थे। इतिहास कहता है कि भारत में चक्रवर्ती राजाओं का निवास था। परन्तु चक्रवर्तीयों के चक्रवर्ती ऋषिवर थे। केवल राजा की पूजा अपने देश में ही होती है, परन्तु विद्वान की सर्वत्र पूजा होती है।

विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन्।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

अन्य लोगों के आधिपत्य पर भोगने के लिए अपनी स्वतन्त्रता का खोना वह तो खोट का व्यापार है। सत्ता की शोध और स्वतन्त्रता का खोना, अन्य के सत्ता पर जमाने के लिए प्रयत्न करना और अपनी जाति का आधिपत्य खो बैठना वह तो पुत्र प्राप्ति के प्रयत्न से पति को खोने का जो परिणाम होता है वैसा आयोग्य है। ब्राह्मणों की सत्ता और प्रभाव के सम्वन्ध में एक कथा याद आती है। गौतम महर्षि के आश्रम में उत्तंक नामक एक शिष्य अध्ययन करता था बहुत दीर्घ समय तक उसने अध्ययन किया। वृद्धावस्था जाने लगी परन्तु वह अपने घर नहीं गया।

उसने गृहस्थाश्रम का भी प्रारम्भ नहीं किया। एक समय यज्ञ समिधाओं को काट कर जंगल से आश्रम में आ रहा था और तव अपनी जटा का एक केश तंतु सफेद रंग वाला समिधाओं में लिपटा हुआ देखा। इसी से उसको अपने बहुत भाग का आयुष्य चला गया वैसा माना हुआ अपने घर जाकर गृहस्थाश्रम शुरु करने का विचार किया। गुरु के पास अपने घर जाने की रजा माँगने लगा और गुरू दक्षिणा देने के लिए विनम्र भाव से दिवेदन किया। गुरु ने प्रसन्न होकर इसी से कुछ भी नहीं लेने के लिए इच्छा व्यक्त की परन्तु विशेष आग्रह से भी गुरु ने जब नहीं माना तब गुरु पत्नी के पास जाकर गुरुदक्षिणा की माँग करने को कहा। तब उन्होंने भी अपनी कोई भी इच्छा नहीं प्रकट की। परन्तु विशेष

आग्रह पर गुरु पत्नी ने कहा कि यदि तेरा आग्रह हो है तो सौदास राजा की राणी मदयन्ती के कुण्डल पाँच दिन के अन्दर ही प्राप्त करके मुझे दे दें। यदि उसमें विलम्ब हुआ तो मैं शाप देकर भस्म कर दूंगी। गुरुपत्नी की आज्ञा से उत्तंक कुण्डल लेने के लिए सौदास राजा के यहाँ गया। तब सौदास ने व्याघ्र का स्वरूप धारण किया। वह उसको खाने के लिए दौड़ा। उत्तंक ने कहा तू मुझे अवश्य भक्षण कर उसमें मेरा कोई विरोध नहीं। परन्तु मैं मेरी गुरु पत्नी की आज्ञा से तेरी राणी के कुण्डल लेने आया हूँ। तू वह मुझे दे दे। वह देकर मैं तेरे पास अवश्य आ जाऊँगा। तब तू अवश्य भक्षण कर लेना। इसी से सौदास ने अपनी पत्नी के पास भेजा। उत्तंक ने वहाँ जाकर सभी वृत्तांत कहा और कुण्डलों की माँग की। इतना ही नहीं परन्तु आप के पति ने ही मुझे आप के पास भेजा है वैसा निर्दिष्ट किया। मदयन्ती ने उसका प्रमाण माँगा। फिर उत्तंक ने राजा के पास जाकर स्वामी के लिए निशानी प्राप्त करके आया। इसी से मदयन्ती ने अपने कुण्डल निकाल कर दे दिया।

और कहा कि मेरे ये कुण्डल तक्षक नाग लेने को इच्छित हैं। इसी से तूं अत्यन्त सावधानी से ले जाना। यह सूचना स्वीकार कर के उत्तंक गुरू के आश्रम पर आ रहा था वहाँ पर उसको अत्यन्त भूख लगी। इसी से कुण्डलों को मृग चर्म में लपेट कर नीचे रख दिए और फल लेने के लिए वृक्ष पर चढ़ा। इतने में तक्षक वहाँ पर आया और कुण्डल लेकर एक गाढ़ अन्धकार युक्त बील के भाग से पाताल में निकल गया। उत्तंक उसके पीछे दौड़ा परन्तु बील अत्यन्त गहरा होने के कारण अत्यन्त अन्धकार को देख कर पाताल में जाने के लिए प्रकाश की उसको आवश्यकता हुई, उसने वज्र का ध्यान किया। वज्र आया और उसी से विवर को खोद कर वह वहाँ पर गया और कुण्डल उत्तंक को वापिस दिए पीछे उत्तंक गुरू के आश्रम पर गया और गुरु पत्नी को कुण्डल दिया। तक्षक जैसे शक्तिशाली को भी झुकाया और उसको उत्तंक के आधीन होना पड़ा। तक्षक नाग को आज्ञा कर शमीक ऋषि के पुत्र श्रृङ्गी ने परीक्षित को सात दिन के भीतर ही मार देने का आदेश दे दिया। तक्षक को यह बात स्वीकार करनी पड़ी। तात्पर्य यह है कि भारत ब्राह्मणों का देश है। उपनिषदों में राज अश्वपति कहते हैं कि—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न च मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा वर्तयन्ति परस्परम् ॥

मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, दुःखी नहीं, मद्यपी नहीं, व्यभिचारी ही नहीं तो वहाँ वेश्या की क्या गति ? इसी कारण कोई दुःखी नहीं था।

इसके ७ वें शतक में बौद्धधर्मी यात्री हुएनसांग भारत आया था। सारे भारत में प्रवास करने के बाद में उसने लिखा था कि—

Among the various castes and elans of the Country the Brahmans are the purest and the most esteem so from their excellent Reputations the name Brahman Country has come to the popular all over the world.

भावार्थ--

सज्जनों ! देश में बहुत जातियाँ और वर्ग हैं। उसी में ब्राह्मण अत्यन्त पवित्र और मान पात्र हैं। ब्राह्मणों की उत्तम कीर्ति के कारण ही पृथ्वी उपर के देशों में यह देश ब्राह्मण देश कहा जाता है।

पटना के मौर्य दरबार में आया हुआ ग्रीकरालची मेगेस्थिनिस कहता है कि—

The Brahmins have the greatest prestige.

देश में ब्राह्मणों का मान बहुत है। ई. स. पूर्व ३२७ में महान् सिकन्दर हिन्द आया। तब उसके इतिहास लेखक और पीछे ई. स. ६०० में अरब मुसाफिर अल्बेरुनी ने और ई. स. १२५० में युरोपीय मुसाफिर मार्कोपोलो ने अपने ग्रन्थों में ब्राह्मण संस्कृति की अत्यन्त स्तुति की है।

भारत के प्राचीन ग्रन्थों के भाषान्तर जहाँ-जहाँ हुए हैं और उनका पान जिन्होंने प्रेम से किया, उन्होंने भारत के ब्राह्मणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

भारत ने पीरामीड या इफिल टावर का निर्माण नहीं किया; वराल या बिजली की शोध नहीं की। आगगाड़ी आग वोट, एरोप्लेन, फोनोग्राफ, रेडियों, टेलीफोन, टेलिविजन आदि नवीन शोध भारत में नहीं हुई। परन्तु, राम और वसिष्ठ, विश्वामित्र और भरद्वाज, याज्ञवल्क्य, जनक और अजात शत्रु, श्रीकृष्ण, गौतमबुद्ध और महावीर आदि ने आत्मतत्व की शोध की हैं।

इसी से भारत सन्तों की जन्मभूमि मानी जाती है। सीता, शकुन्तला, दमयन्ती, गार्गी, द्रौपदी, मेनावती, अनसूया अरुन्धती आदि स्त्री रत्न भी ब्राह्मण संस्कृत के फल हैं। गीता, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र आदि सद्ग्रन्थों ब्राह्मण संस्कृति के प्रसादी ग्रन्थ हैं। अशोक देव ने पाटली पुत्र से बौद्ध साधुओं को भेज कर चीन, जापान, लंका, सीरीया ग्रीस आदि स्थलों तक ब्राह्मण संस्कृति का बीजारोपण किया। वह फले फूले और जगत ने देखा। भरत खण्ड का दिग्विजय ब्राह्मण वर्णी थे। ऐसे कई प्रमाणों से विश्व में यह भारत देश 'ब्राह्मण देश' कहा गया है। कुछ लोग ज्ञानाज्ञान से मगर हंसी मजाक में सच ही कहते हैं।

India eats Religion drinks Religion likes Religion आदि (भारतवर्ष धर्म को खाता है पीता है और धर्माचरण करके जीते हैं)

सज्जनों ! तात्पर्य यह है कि भारत के संसार में सदा ब्राह्मणत्व की पूजा हुई है श्री रामायण में राम बोले हैं।

पुण्य एक जग में नहीं दूजा। मनक्रम वचन विप्रपद पूजा ।।
सानुकूल तेहि पर सब देवा। जो तजि कपट करे द्विज सेवा।।

श्रीराम ने कवन्ध को तो वैसा कहा था कि—

शापत तांडत पुरुष कहंता। विप्र पूज्य अस गावहिं सन्ता ।।
पूजिय विप्र शील गुण हीना। नहिन शूद्र गुण ज्ञान प्रवीना ।।
सुनु गन्धर्व कहेउ मैं तोहीं। मोहि न सोहाहि ब्रह्मकुल द्रोही ।।

इस प्रकार सज्जनों ! श्रीमद्भागवत में भी जहाँ-तहाँ ब्राह्मण मेरा स्वरूप है। मैं ब्राह्मण रूप हूँ। वैसा प्रभु ने पुनः पुनः कहा है।

सज्जनों ! यह ब्राह्मण देश है उसी को समझने के लिए इतिहास को तीन खण्डों में बाँटना पड़ा ।

प्रथम खण्ड ई. स. ११६३ वर्ष पूर्व का प्राचीन युग ।
दूसरा खण्ड ई. स. ११६३ से १७६१ इस्लाम युग ।
तीसरा युग ई. स. १७६१ से अभी तक का अर्वाचीन युग ।

प्राचीन युग—वेदों की संहिताएँ, वेदों के भाष्य, आरण्यक, उपनिषद. गीता, गृह्यसूत्र, श्रौत्रसूत्र, ब्रह्मसूत्र. षट्दर्शन आदि अनेक ग्रन्थों का पठन पाठन ब्राह्मण लोग करा रहे थे । बौद्ध और जैन भी ब्राह्मणों के ग्रन्थ से धनिक हुए हैं । जनक, हरिश्चन्द्र, भीष्म, धर्मराज, युधिष्ठिर, बुद्धदेव, महावीर आदि जो इतिहास के पृष्ठों में चमके हैं सुशोभित हुए थे । वह ब्रह्म संस्कृति का फल है । हिमालय मानसरोवर आदि पवित्र तीर्थ ब्राह्मण संस्कृति के निवृत्ति स्थान हैं । पश्चिम में द्वारिका, पूर्व में जगन्नाथपुरी, उत्तर में वद्रीनाथ और दक्षिण में रामेश्वर ब्राह्मण देश की सीमा रूप है । इस पर एक कथा याद आती है ।

सज्जनों ! महाभारत युद्ध के अंतिम दिन कौरव हारे । इस समय भी पाण्डवों की अधिक सेना बची हुयी थी । लड़ाई समाप्त हो जाने पर पाण्डव श्रीकृष्ण भगवान के साथ जाकर दूर बैठे हुए थे । उधर दुर्योधन आखिरी साँस ले रहा था । इसी समय अश्वत्थामा ने आकर सान्त्वना देते हुए कहा—

"दुर्योधन तुम सुख से प्राण त्यागो । मैं आज ही पाण्डवों को नष्ट कर देता हूँ । इसके वाद अश्वत्थामा पाण्डवों के डेरे पर गया । उस समय सव सो रहे थे । उसने उन सोते हुए मनुष्यों को मार दिया । द्रौपदी को जव खवर मिली तो वह विलाप करन लगी । उसे दुःखी देखकर अर्जुन और भीम ने कहा—"तुम रोओ मत । हम अभी जाकर तुम्हारे पुत्रों के हत्यारे को पकड़ लाते हैं ।" ऐसा कह कर उन्होंने अश्वत्थामा का पीछा किया और पकड़ कर द्रौपदी के पास ले आए । द्रौपदी की उस पर नजर पड़ी तो गुरु पुत्र को उसने वन्धन में पड़ा देखा । भीम उसका सिर काटने को तैयार हो गए यद्यपि उस समय द्रौपदी के हृदय में पुत्र शोक की ज्वाला धधक रही थी । फिर उसने आँसू भरे नेत्रों से अश्वत्थामा की ओर निहार कर गद् गद् कण्ठ से कहा—

मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ।
स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ॥
मारोदीदस्य जननी गौतमी पति देवता ॥
यथाऽहं मृतवत्साऽऽर्त्ता रोदिम्यश्रु मुखी मुहुः ॥

इसे छोड़ दो जैसा भी है अपना गुरु पुत्र है । हमें इसका वध नहीं करना चाहिए । पुत्रों के मरण से मैं जैसी दुःखी हूँ वह दुःख मैं गुरुपत्नी को देना नहीं चाहती । भीम और अर्जुन द्रौपदी के इस वचन को सुनकर वहुत विस्मित हुए । भीष्म आदि ने भी वह सुनकर द्रौपदी की भूरि-भूरि प्रशंसा की । सारांश यह है कि सर्वनाश को अपनी दृष्टि के सन्मुख देखती हुयी भी भारतीय नारी ब्राह्मण के कुल का सर्वनाश करना नहीं चाहती । यही ब्राह्मण धर्म की विशिष्टता की चरम सीमा है । जो अनेक अनर्थों की खान रूप स्त्री जाति होने पर भी अनेक गुरु पुत्र का वध अपने नेत्रों के आगे

देखना नहीं चाहती थी। अतः श्री कृष्ण के निर्देशानुसार अश्वत्थामा के मस्तक का मणि निकाल कर उसे धक्का देकर अपने अड्डे से निकाल दिया गया। यह ब्राह्मणों की महत्ता को दिखाने वाला अपूर्व प्रसंग हैं। इससे वढ़कर अन्य क्या प्रमाण आप को मिल सकता है? ब्रह्म दण्ड और सन्यास दण्ड राज दण्ड से भी विशेष वन्दनीय थे। इसी से ही हुएनसांग ने कहा कि भारत ब्राह्मणों का देश है। India is a Brahman Country तक्षशिला और नालन्दा का विश्वविद्यालयों का सौंन्दर्य ब्राह्मणों के द्वारा ही पल्लवित हुआ था। ओक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया (Oxford History of India) नामक ग्रन्थ का कथन है कि—

The numerous brahmins and buddhist sants served the purpose of schools and so produced a higher general pereantage of education amongst the population than that exuting at present.

(ब्राह्मण और बौद्ध साधु जहाँ-तहाँ शिक्षक का काम करते थे और उन्हीं से अभी से भी ज्यादा प्रचार होता था।) पूर्वकाल में सभी स्थलों में ब्राह्मण ही शिक्षक थे। पाठशालायें भी उन्हीं के घर पर थी। वहुत अल्प व्यय से विद्या का प्रचार होता था और वालक विनयी सादे सरल तैयार होते थे। ई. स. ११९३ में पृथ्वीराज चौहान ने दिल्ली गवाँ दी।

सज्जनों! भारत का मध्य युग इस्लाम युग था। ई. स. ११९३ से १७६१ तक इस्लाम के सर्वोत्तम वादशाह, शहेनशाह आदि ओलयाओं के शरण रहते थे। अकवर परमहंसो से वेष्टि तथा दारा, फैजी, अवुल फजल ब्राह्मण संस्कृति के उपासक थे। राणासंग, राणाप्रताप और शिवाजी महाराज इस्लाम युग के रत्न थे। मेवाड के महाराणा आज तक भी राजा नहीं थे। परन्तु एकलिंगजी के दिवान थे। उदयपुर के एकलिंगजी का भगवाध्वज फरकता था, इस्लाम युग में गुरु गोविन्दसिंह ने अच्छा प्रभाव डाला था। संयुक्त प्रांत में सूरदास, तुलसीदास आदि वैष्णव भक्त राजों का सन्त समाज था। श्री रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निर्म्वाकचार्य श्रीरामानन्द, श्री वल्लभाचार्य आदि सन्त ब्राह्मणों के सुकानी थे जिन्होंने सुखती हुयी ब्राह्मण संस्कृति को हरी वनाने, हरी रखने के लिए दौड़ कर आए थे। सतियों को शिथिल के पाठ पढ़ाने वाले ब्राह्मण थे। हिलती पेश्वाई सल्तनत आधी से अधिक ब्राह्मणवर्णी थी। और आधी क्षात्र वर्णी थी। राजपूतों को रण विद्या सिखानें वाले, कडिया, सुतार आदि कारीगरों को कारीगरी सिखाने वाले ब्राह्मण गुरू थे। इस्लाम युग में मुसलमानों ने वहुत ब्राह्मणो को भ्रष्ट कर दिए थे। तो भी अभी ब्राह्मण गाँवों गाँव है। अभी ब्राह्मणों के ग्रन्थ भी अधिक हैं। ये सभी ब्राह्मणों के गहन मूल का निंर्देश करते हैं। वार्डो की सुरक्षा टूट गयी, लताएँ सुखती हैं। तो भी अभी मूल कुछ हरे हैं। जल सिंचन हो तो तुरन्त ही पल्लवित हो जाय।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं, पुमान् भवाब्धि न तरेत्स आत्महा॥

सज्जनो! जिनके कृपा कटाक्ष के बिना देव दानव गंधर्व यक्ष राक्षस किन्नरादि भी कुछ भी कार्य करने में समर्थ नहीं होते। उन परम कृपालु परमात्मा ने ही सभी जीवो के उद्धारणार्थ सत्य संकल्प किया। और अमृत और लक्ष्मी प्राप्ति के निमित्त महा पुरूषार्थ का प्रारम्भ करने का एक निश्चय किया

गया। देवराज इन्द्र भी श्री विहीन होने के कारण बड़ा दुःखी था। भगवान् श्रीमन्नानारायण के नेतृत्व में इस कार्य के सम्पादनार्थ हिमवान् के पावन प्रदेश बद्रीनाथधाम में देवताओं की महापरिषद का आयोजन किया गया और देवों के साथ प्राणी मात्र के कल्याणार्थ निर्णय किया गया कि सभी के दुःखों के विचारणार्थ बड़े उत्साह के साथ महोद्योग किया जाय। परन्तु कौन सा उद्योग किया जाय उसका निर्णय देने का अधिकार सभा श्रीमन्नानारायण को ही दिया गया।

भगवन्नारायण को सद्गुरु के स्थान में नियत करके यह समस्त कार्य उनके नेतृत्व में सम्पादन करने का निर्णय देवों ने किया और सांसारिक आधिदैविक आधि भौतिक त्रिविधताप से मुक्ति प्राप्त करके धर्मार्थकाम मोक्ष आदि चतुर्विध पुरुषार्थ की प्राप्ति करके जो मनुष्यादि इस भव सागर से पार होने का यज्ञ नहीं करता वह आत्मघाती माना जायगा।

सज्जनो! अपने तीर्थों में चारधाम अर्थात् बद्रीनाथ, जगन्नाथ, द्वारका और रामेश्वरम् का सर्वोपरि स्थान है। इसके बाद सप्त पुरियों में जिन्हें मोक्ष दायिनी माना गया है उनमें अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार) काशी, काञ्ची, अवन्तिका और द्वारावती ये सात पुरियाँ मोक्षदायिनी कही गयी हैं। शैव और वैष्णव सम्प्रदाय के भेदानुसार इन सप्तपुरियो को तीन भागो में अर्थात् शैव वैष्णव और उभयात्मक इस प्रकार के बाँटा गया है।

शैव		वैष्णव		उभयात्मक
		अयोध्या		(शैव-वैष्णव)
काशी	—	अयोध्या	—	काँची (शिवकांची)
अवन्तिका	—	द्वारावती	—	विष्णु काँची
		मथुरा	—	हरिद्वार (हरद्वार)

सज्जनो! इस प्रकार दो तीर्थों को तीर्थों के राजा याने तीर्थराज के विशिष्ट रूप में माने गए हैं। जो पुष्करराज और प्रयागराज के नाम से तीर्थों में सूचित किया गया है। अब आगामी महाकुम्भ पर्व नियमानुसार बारह वर्ष के पश्चात् प्रयागराज में आया है। मैदानों में गङ्गा के दर्शन प्रथमवार ही होते हैं। हरिद्वार में दूसरी बार होते हैं प्रयागराज में अबकी महाकुम्भ प्रयाग में आया है। यहाँ के महाकुम्भ का पर्व का निर्णय शास्त्रों में इस प्रकार किया गया है।

सज्जनो! पुराणो में दी गई समुद्र मन्थन की कथा को लेकर ही महाकुम्भ पर्व चला है। देव और दानवों में सदा ही वैमनस्य रहा है, किन्तु एक समय ऐसा भी रहा है जब दोनों का समझौता हो गया था। दोनो ओर के प्रमुखो ने परस्पर विचार विमर्श के बाद यह निश्चय किया कि हम लोग पृथ्वी के चप्पा-चप्पा को देख चुके हैं और ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे हमने प्राप्त नहीं किया हो केवल सागर ही हमारे अन्वेषण में शेष है। समस्त भूमण्डल को घेरे हुए रत्नाकर नाम से विख्यात असीम जल राशि के अधिपति सागर में अनेक अमूल्य रत्न तथा अमरत्व प्रदान करने वाला अमृत दबा हुआ है।

विलक्षण शक्ति वाले देव-दानवों में अमृत प्राप्ति की सुखद कल्पना को लेकर अदम्य उत्साह था। किन्तु समुद्र की खोज और अमृत प्राप्ति कोई साधारण कार्य नहीं था। संगठन-श्रम और तपश्चर्या सफलता के कदम हैं. अतः सागर के अन्वेषण मन्थन के लिए मन्दराचल पर्वत का मथनदंड (रवैया) बनाने की योजना की गई तथा सर्पराज वसुकी को रस्सी के लिए आमंत्रित किया।

सज्जनों! मन्दराचल की मथनी और वसुकी को रस्सी बनाकर समुद्र मन्थन का कार्य प्रारम्भ किया गया। कार्यारम्भ हो गया। सर्प के मुख की तरफ दानव तथा पुच्छ की तरफ देवता लोग अपार उत्साह से समुद्र को मथने में जुटे हुए थे। मंथन की भीषणता से तीन लोक काँप रहे थे। सागर के जीव-जन्तु और स्वतः सागर की दुर्गति तो अकथनीय थी ही। जैसा कि संगठन के समक्ष सबको झुकना पड़ता है। तदनुसार देव दानवों को संगठनात्मक शक्ति के आगे रत्नाकर को भी झुकना पड़ा और अन्यान्य १४ रत्नों के साथ क्रमशः सुवर्ण कलश में वन्द अमृत वाहर आगया।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्या पिहित मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्॥

सज्जनों! अमृत प्राप्ति से चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण छा गया, देव-दानवों का श्रम सफल हो जाने के कारण वे अपनी थकान भी भूल चुके थे। दोनों ही उक्त अमृत का कलश हड़प करने की कुछ चाल सोच रहे थे कि इसी बीच देवराज इन्द्र ने अपने पुत्र युवान् जयन्त को अमृत कलश लेकर भागने के लिए ईशारा कर दिया था। जयन्त कलश लेकर भाग रहा है वैसा देखते ही दानवों को देवों की चाल समझने में देर नहीं हुई और परिणाम स्वरूप देव दानवों में भयंकर संग्राम छिड़ गया। कहते हैं कि यह संग्राम देवताओं के १२ दिन अर्थात् मनुष्यों के १२ वर्ष तक चला था। इस १२ वर्षों के भीतर इसी भीषण संग्राम में जयन्त चार वार चार स्थानों में दानवों की पकड़ में आ गया था।

सज्जनों! आपसी संघर्ष और छीना झपटी में अमृत की कुछ बूंदे इन्हीं स्थानों में छलक पड़ी थी। अमृत कलश हड़प करने के लिए दानवों ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी किन्तु देवताओं के संगठन एवं कूट चालों ने उन्हें सफल नहीं होने दिया। देवों में से सूर्य-चन्द्र और गुरु का अमृत कलश के संरक्षण में विशेष सहयोग रहा था। चन्द्र ने कलश को गिरने से सूर्य ने फूटने से तथा वृहस्पति ने असुरों के हाथों में जाने से वचाया था।

इसी कारण इन तीनों ग्रहों की विशिष्ट स्थिति में तथा उन्हीं चार तीर्थों में जहाँ अमृत बूंदे गिरी थीं, वहीं पर पर्व मनाए जाने की परम्परा है। प्रयाग-हरिद्वार-नासिक तथा उज्जैन वे ही चार तीर्थ पृथ्वी पर हैं।

सज्जनों! यह अमृत कलश थकान के कारण जयन्त ने १२ स्थानों पर रखा था उसी मध्य के ४ स्थानों का ऊपर निर्देश किया गया और अन्य ८ स्थान देव लोगों के प्रदेश में गुप्त रूप से है। देवलोगों में देव ही कुंभ महापर्व का स्नान करते हैं। मानव नहीं। किन्तु पृथ्वी लोक पर मानवों के साथ देव भी स्नान के लिए पहुँचते हैं। यह महाकुंभ का एक पर्व स्थान पर १२ वर्षों के बाद और चारों स्थानों के हिसाब से प्रायः एक से दूसरा कुंभ ३।। या ४ वर्ष के वाद इस हिसाब से पड़ता है। जहाँ पर प्रथम कुम्भ हुआ वहां पर उसी स्थान में फिर महाकुम्भ पर्व १२ वर्षों के वाद ही आता है। जैसे हरिद्वार

का गत कुम्भ ई. स. १९७४ में आया था। वैसे हरिद्वार में अब दूसरी बार कुंभ महापर्व ई. स. १९८६ में आयगा। १२ वर्ष के वाद जो कुंभ पर्व आता है वह वैसे ही नहीं आता उसका भी कुछ हिसाब योग का मिलान होता है तभी कुम्भ पर्व माना जाता है।

सज्जनो ! मनुष्य को यह शरीर कल्याण प्राप्ति के लिए ही मिला है। मनुष्येतर जितनी भी योनियाँ हैं वे भोग योनियाँ हैं। मृत्यु लोक के सिवा सभी लोक भी भोग भूमियाँ हैं। विष्णु पुराण में कहा है कि—

तत्रापि भारतं श्रेष्ठं, जम्बुद्वीपे महामुने।
यतोहि कर्मभूरेषा, ततोऽन्या भोगभूमयः॥

सज्जनो ! उनमें यदि किसी का कल्याण हो गया तो वह अपवाद मात्र है। रियायत है। पशु पक्षी कीट पतंग आदि योनियों में तो बुद्धि की मन्दता के कारण परमात्मा का तात्त्विक यथार्थ ज्ञान अनुभव होना दुर्लभ है। यथार्थ ज्ञानानुभव के विना मुक्ति भी सहज में लभ्य नहीं।

सज्जनो ! इस सारी कथा में आप को मालूम हो गया कि एकता से ही दुर्लभ वस्तु भी आसानी से प्राप्त की जाती है।

"सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब विधि घटब काज मैं तोरे।"

यहाँ इस सम्बन्ध में एक कथा याद आती हैं। एक पिता के चार बेटे थे। वे चारों यद्यपि सुमति से रहते थे फिर भी कभी-कभी परस्पर लड़ाई हो जाती थी।

इसी समय बाप मरण शय्या पर पड़ा है। दुनिया की यह रीति है कि चाहे कोई स्वयं झगड़े का घर हो, परन्तु वह दूसरे को ही दोषी वताएगा। बाप इस बात को भली भाँति जानता था। अतः एक युक्ति करके बोला– मेरे प्यारे बच्चों ! लो यह पतली लकड़ी तोड़ डालो। उन्होंने उसको तोड़ डाला तव लकड़ी का एक मोटा गट्ठा देकर कहा अच्छा अव इसे तोड़ो। उनमें से हर एक ने कोशिश की पर वह नहीं टूटा। तव सज्जनों ! पिता वोला—हे पुत्रों ! यदि तुम औरों के सिखाये रास्ते पर चलकर आपस में मेल से नहीं रहोगे तो नष्ट हो जाओगे। यदि मेरी शिक्षा मानते हुए लकड़ी के एक गट्ठे के समान चारों भाई समान भाव से मिलकर रहोगे तो सुख पाओगे। लड़के समझ गए और उन्होंने कहा पिताजी आज से आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। हम इसका पालन करेंगे। इसी से देवताओं ने दैत्यों से सहयोग करके अमृत प्राप्ति का प्रयत्न किया तो उसमें उनको सफलता मिली। परन्तु फिर कुछ छल के कारण भयंकर संग्राम करना पड़ा और दुःखी हुए।

सज्जनों ! फिर भगवान् विष्णु से मोहिनी रूप धारण करके देव दानवों से शर्त करके कथा भाग अमृत परिवेषण का प्रारम्भ किया। उस मध्य दैत्यों में राहु ने चन्द्र सूर्य के मध्य बैठकर अमृतपान किया। चन्द्र सूर्य के इशारे से भगवान् ने सुदर्शन से राहु का मस्तक काटा। परन्तु अमृत के पान द्वारा सिर और धड़ दोनों अमर हो गए थे। इसी से देवों के संदेश वाहक रूप में आज भी पर्व-पर्व पर चन्द्र सूर्य को वे राहु-केतु के रूप में वाधक होते हैं।

सज्जनो ! देवताओं में बुद्धि तो तीक्ष्ण है परन्तु स्वर्ग में भोग की बहुलता के कारण देवताओं की विषयों में आसक्ति होने के कारण परमात्मा को पाने के लिए प्रवृति नहीं होती। इसलिए उनका कल्याण होने में कठिनाई है तथा उन्हें अधिकार भी प्राप्त नहीं हैं। परन्तु मनुष्य का उसमें भी अधिकार

है। ऐसे अधिकार को पाकर भी यदि मनुष्य कल्याण से वंचित रहे तो वह उसका प्रमाद है और घोर पश्चाताप का विषय है। श्रीमद्भागवत में कहा भी है कि—नृदेहमाद्यं सुलभं ।। इसी बात को संत श्रीतुलसीदास जी अपने श्रीरामचरितमानस में लिखते हैं—

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुरदुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा ।।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक संवारा ।।
सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि-धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोस लगाइ ।।

सज्जनों। मनुष्य के कल्याण में सबसे प्रधान बाधक मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा विषयों में आसक्त होकर उन सबके अधीन हो जाना ही है। क्योंकि विषयों में आसक्ति वाले यत्नशील विवेकी मनुष्य की इन्द्रियाँ भी बलात्कार से उसके मन को विषयों की ओर आकर्षित कर लेती है। इस पर श्रीरामकृष्ण परमहंस का वचनामृत याद आता है।

सज्जनों। एक श्रद्धालु भक्त परमहंस श्री रामकृष्ण को अपने यहाँ भोजन करने के लिए बुला ले गया। उनको कम खाते देखकर पड़ोसी ने उनसे और मिठाई खाने का आग्रह किया। इस पर उन्होंने कहा—भाई इन्द्रियाँ बदमाश घोड़े की तरह हैं। ये तो मौका देखती ही रहती हैं। इसलिए मैं अपनी साधनारूपी लगाम को सतर्कता के साथ थामे रहता हूँ। यदि लगाम को ढीलो कर दूं या एक आध चाबुक लगा दूँ तो कौन जाने, यह दुष्ट सवारी मुझे किस गड्ढे में जाकर ढकेल दें। गीताजी में वही बात कही है।

"यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।।२।६०।।

इसलिए साधक को मन के द्वारा इन्द्रियों को वश में करके ही परमात्मा के शरण हो जाना चाहिए। जब देव दानवों ने भी मोहिनी स्वरूप परमात्मा का शरण लिया तब अमृत पान किया। आप भी परमात्मा का पल्ला पकड़ो तो अमृत पान करके जीवन में अमरत्व प्राप्त करोगे। जब तक मन वश में नहीं होता तब तक परमात्मा की प्राप्ति होना बहुत ही कठिन है। भगवान् कहते हैं 'जिसका मन वश में किया हुआ है नहीं, ऐसे पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है और वश में किए हुए मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन से उसका प्राप्त होना सहज है। यह मेरा मत है।

सज्जनों। इसलिए मन को अपने वश में और स्थिर करने के लिए शास्त्रों में जो बहुत उपाय बताए हुए हैं उनमें से किसी भी उपाय के द्वारा मन को निगृहीत और स्थिर करना परमावश्यक है। मन की चंचलता तो प्रत्यक्ष है। अर्जुन ने भी मन के चंचल होने के कारण इसको वश में करना कठिन बताया है।

"योऽयं योगस्त्वया साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ।।३३
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।३४ (श्री म. भ. गी. ६।३३-३४)

किन्तु भगवान् अर्जुन के कथन का समर्थन करते हुए मन को रोकना कठिन मानकर भी इसका उपाय बतलाते हैं।

"असंशयं महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।३५।।

(श्री म. भ. गी. ६।३५)

हे महाबाहो ! निःसंदेह मन चञ्चल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु हे कुन्तिपुत्र अर्जुन ! वह अभ्यास और वैराग्य के द्वारा वश में होता है।

सज्जनों ! आपको कह रहे थे कि राहु और केतु ने अमृत पान के द्वारा देव पंक्ति में अपना स्थान निश्चित किया और सूर्य एवं चन्द्र के निर्देशानुसार मोहिनी स्वरूप भगवन्नारायण ने राहु का मस्तक सुदर्शन से काट दिया। तब उन्होंने सूर्य चन्द्र के प्रति द्वेषभाव धारण करके पर्व-पर्व पर उनको पीड़ा करने के लिए ग्रहण रूप में सूर्य चन्द्र को भक्षण करने के लिए दौड़ते हैं।

सज्जनों ! ब्राह्मण लोग और क्षत्रिय वैश्य आदि जिनको व्यवस्थित रूप से यज्ञोपवीत (उपनयन) संस्कार प्राप्त हुए हैं, वे लोग सन्ध्या के द्वारा सूर्य को अर्घ्य प्रदान करते हैं। उसी संध्या का जल उनको ग्रहण के समय काम आता है और राहु केतु के साथ सहायक मन्देहा नामक राक्षसों का संहार हो जाने के कारण राहु केतु की शक्ति भी क्षीण हो जाती है और अपनी सब आपत्ति को दूर करके वे सूर्य और चन्द्र शुद्ध रूप में चमकने लगते हैं।

सज्जनों ! यह सूर्य चन्द्र के संक्रमण योग द्वारा ही अन्य ग्रहों की पुष्टि के द्वारा जो योग बनते हैं उसी प्रकार ही यह कुम्भ योग का आवागमन होता है। पहले ही आपको कहते आये हैं कि १२ स्थानों में ग्रहों और संक्रान्ति के योगों के द्वारा महाकुम्भ का योग बनता है। उनमें ८ स्थान देवलोक में ४ स्थान पितृलोक में याने मर्त्यलोक में हैं। कुम्भ का यह पर्व कितना प्राचीन है इसके संबंध में भिन्न-भिन्न जिससे यह सब घटना का योग स्वरूप और उसकी प्राचीनता आपके ध्यान में आ जायगी।

सज्जनों ! कुम्भ का महापर्व अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। यहाँ तक कि वेदों में भी महाकुम्भ का वर्णन हमें प्राप्त होता है। जैसे कि ऋग्वेद आठवाँ अष्टक अ, ४ मं. ७।१२ वाँ अष्टक अ. ३ मं. २३।सामवेद पू. ६।३ अथर्व वेद ४।४।७।।१६।५३।३।।१६।६।८।। में कुम्भ का वर्णन किया गया है।

कुम्भी वेधां मा व्यधिष्ठा यज्ञायुधै राज्ये नातिषिक्ता ।।
आविशन् कलश सुतो विश्वाऽर्षन्नमिश्रियः । इन्दुरिन्द्राय धीमते ।।

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा दधायि ।।
कुम्भी कादूषीकाः पीयकान् ।।

अर्थात् इन मन्त्रों का अर्थ दिखने पर आपको ज्ञात होगा कि ! हे कुम्भ पर्व ? तुम यज्ञीय वेदी में यज्ञीय आयुधो से घृत द्वारा तृप्त होने के कारण कष्टानुभव मत करो।

कुम्भ-पर्व सत्कर्म के द्वारा मनुष्य को इहलोक में शारीरिक सुख देनेवाला और जन्म जन्मान्तरों में उत्कृष्ट सुखों को देने वाला है। हे साधुगण। पूर्ण कुम्भ समय पर याने बारह वर्ष के बाद आया करता है। जिसे हम अनेकों बार प्रयागादि तीर्थों में देखा करते हैं। कुम्भ महान् आकाश में ग्रह राशि के योगों से होता है। ब्रह्म कहते हैं हे मनुष्यों मैं तुम्हें, ऐहिक तथा आमुष्मिक सुखों को देने वाले 'चार कुम्भों' का निर्माण कर चार स्थानों हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक में प्रदान करता हूँ।

सज्जनों ! कुम्भ पर्व की बड़ी विलक्षण महिमा है। कुम्भ का महापर्व भारतवर्ष में ही पड़ता है। जिनके स्थान आपको अभी ही हमने कहे। जिसने धर्म प्राण भारत में जन्मधारण करके और मनुष्य योनि पाकर कुम्भ महापर्व का आनन्द नहीं लूटा मानो उसने अपने जीवन में कुछ नहीं किया। लाखों कार्यों को छोड़कर भी मनुष्य को महाकुम्भ पर्व का स्नान अवश्य करना चाहिए।

सज्जनों ! यह महाकुम्भ पर्वों में भारतवर्ष की तीन महानदियों की बड़ी महिमा है। उसमें एक है गंगा जिसके तट पर हरिद्वार और प्रयागराज नामक दो महातीर्थ पड़ते हैं। उन्हीं दोनों स्थानों में अर्धकुम्भी और पूर्ण कुम्भ के महापर्वों का बड़ा महत्व माना गया है। दूसरी महानदी है क्षिप्रा जो उज्जैन में पड़ती है। जहाँ पर द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग महाकाल के दर्शन करके मानव अपने जीवन को धन्य बना देता है। चौथा स्थान है नाशिक जो गोदावरी नदी के पावन तट पर बसा हुआ और दसवें ज्योतिर्लिङ्ग याने त्र्यम्बकेश्वर भगवान् शिव के दर्शन और गोदावरी के पावन स्नान द्वारा मनुष्य धन्य हो जाता है। इन चारो स्थानों में हजारों शैव-वैष्णव शक्ति आदि अनेक सनातन धर्मावलम्बी स्नान करते हैं।

सज्जनों ! ये चारों कुम्भों पर हजारों दिव्य साधु सन्त और साधारण जनता समेत धनी, मानी, दीन, सभी प्रकार के लोग स्नान के लिए आते हैं। कुंभ पर्व के दिनों में या उसके निमित्त दिया हुआ दान एक कल्प वृक्ष के समान कोटि-कोटि गुणा पुण्य को प्रदान करने वाला है। अनन्त पापों के पुंजों को धारण करने वाला दुष्ट मनुष्य भी यही कुंभों के समय में इन तीर्थों में दान-स्नान और पुण्य करके अपने अनेक जन्म के पापों से छूट जाता है। इस महापर्व के निमित्त दिया हुआ दान अक्षय पुण्य प्रद है। इस संबन्ध में स्वामी श्री गीतानन्दजी भिक्षु का एक भजन याद आता है कि—

'रे मन मुसाफिर निकलना पड़ेगा।
काया कुटी खाली करना पड़ेगा।
भाड़े के कोठे को क्या तूं सँभारे।
जिस दिन तुम्हें घर से मालिक निकाले।
इसका किराया भी भरना पड़ेगा ॥ काया० ॥ १ ॥
आयेगी नोटिस जमानत न होगी।
पल्ले में अगर कुछ अमानत न होगी।
होकर के कैदी तुम्हें चलना पड़ेगा ॥ काया० ॥ २ ॥
चढ़ोगे जब तुमं यमराज की अदालत।
पूछेगा हाकिम तो तुम क्या कहोगे।

(८३)

पापों की अग्नि में जलना पड़ेगा ।। काया० ।। ३ ।।
मनों त मेरी यमराज तो मनायेगा ।
कर्मदण्ड तुम्हें मारकर भगायेगा ।
नरक घोर बीच दु:ख सहना पड़ेगा ।। काया० ।। ४ ।।
कहे गीता नन्द फिरेगा तू रोता ।
लख चौरासी में खायेगा तू गोता ।
फिर-फिर जनमता औ मरना पड़ेगा ।। काया० ।। ५ ।।

सज्जनों ! सबको सजाते हो किन्तु स्वयं नहीं सजते । घड़ी व चूड़ी से कलाई को सजाते हो नथ से नाक को सजाते हो कुण्डल से कान को सजाते हो इत्यादि ये सब है । सबकी भीड़ में स्वयं खो गया । अर्थात् इन सब अङ्गों को सजाते हो किन्तु स्वयं नहीं सजते । सजाने की सजा तो भोगते हो कभी सजने का मजा भी ले लो । सारांश यह है कि वस्त्र आभूषण आदि से शरीर के सब अङ्ग सजते हैं तथा सद्विचार सदाचार और दान से स्वयं सजता हैं । इसके ऊपर एक कथा याद आती है—

एक साहूकार बड़ा दानी था । एक दिन भिक्षुक उसके यहाँ दान माँगने गया । वह बार-बार उसके दरवाजे जाता और आवाज बदल कर दान ले आता । अन्तिम बार जब वह भिक्षुक गया तो उसने उससे कहा कि आप दान तो देते हैं परन्तु एक गलती करते हैं कि आप ऊपर की ओर नहीं देखते आप नीचे की ओर ही देखते रहते हैं, आप के पास से माँगने वाले कई बार ले जाते हैं । मैं ही स्वयं चार बार आप से माँग कर ले गया हूँ । यह सुनकर साहूकार ने कहा कि यह तो मेरा धन नहीं है देने वाली शक्ति तो कोई और ही महान् शक्ति है । लोग मुझको ही दाता कहते हैं इस कारण मैं लज्जित होकर ऊपर नहीं देख पाता ।

देने वाला और है देता है दिन रैन ।
लोग मुझे दाता कहे आते नीचे नैन ।।

सज्जनों ! जिस पर भगवान् दया करता है उसी के हाथों से दान होता है । महाकुम्भ के निमित्त दान में दिया हुआ एक नया पैसा भी आपके जीवन में कल्पवृक्ष की तरह फल दाता होगा । ऐसा अवसर जीवन में बार-बार नहीं आता । क्योंकि महाकुम्भ का योग बारह साल के बाद आता है न जाने कल क्या होगा ? मानव जीवन क्षण भंगुर हैं । वे नर नारी भागी हैं जो सन्तों के चरणों के अनुरागी हैं । महाकुंभ पर्व के निमित्त इन महातीर्थों में किया हुआ दान अक्षय हो जाता है । तुम्हारा एक नया पैसा भी अन्न के रूप में कोई ऐसे सन्त को आत्मा को सन्तुष्ट कर सकता है । जो आपको अनन्त जन्मों में भी मिलना कठिन हों आप पैसे खर्च तो करते ही हो परन्तु उसका सदुपयोग करो । पैसा सदुपयोग के द्वारा ही मूल्यवान बनता है और यह नश्वर मनुष्य जीवन को जो नष्ट होने वाला ही उसको सत्कर्म द्वारा व्यतीत करके जो जीवन नष्ट होता है वह परम शान्ति को प्राप्त करता है । स्वर्ग लाभ करता है । सन्तों की सेवा और दर्शन से विपत्ति का नाश होता है । सन्त तुलसीदासजी ने अपने श्री रामचरित मानस में कहा है कि—

दरस परस अरु मज्जन पाना । हरै पाप कह वेद पुराना ।।

सज्जनों ! इस प्रसंग पर कथा याद आती है। प्राचीन काल में पुरुकुत्स नामक एक प्रतापी राजा थे। उन्होंने राष्ट्र और धर्म के विरोधी कितने ही शत्रुअसुरों को जीतकर अपने अधीन कर लिया था।

अवश्य ही शत्रु विवशतः उनकी शरण आए, पर उन्हें यह बात सदैव खलती रही। फलतः उन्होंने भीतर ही भीतर राजा के विरुद्ध षडयन्त्र चालू रखा। एक दिन जब राजा पुरुकुत्स दो चार रक्षकों के साथ शिकार के लिये निकले और घोर जंगल में पहुँचे तो पहले ही सुनियोजित कतिपय प्रमुख शत्रुओं ने उन्हें घेर लिया। रक्षकों को वहीं समाप्त करके वे राजा को उठा ले गये और चुपके से दृढ़ कारागार में डाल दिया। इधर राजा के शिकार से लौटने में विलंब के कारण राज्य में चिन्ता होने लगी। महारानी ने प्रधान को कुशल चरों द्वारा उनका पता लगाने का आदेश दिया। सर्वत्र जोरों से खोज हुयी, पर कहीं राजा का पता नहीं चला। चर खाली हाथ लौट आये। महारानी अत्यन्त खिन्न हो उठी। उत्तराधिकारी कोई पुत्र न होने से वह स्वयं ही राजकार्य देखने लगी। किन्तु राजा के अभाव में राज्य की सारी प्राचीन सुव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चली। कोई किसी को मानने के लिए तैयार नहीं होता था, महारानी सोचने लगी—"हाय ! आज मुझे कोई प्रतापी पुत्र होता तो क्या ये दिन देखने पड़ते ? वार-वार यह विचार उसके मन में आता और वह मन मसोसकर रह जाती।

सज्जनों ! इस तरह महारानी पुरुकुत्सानी सोचती हुई, खेद करती वैठी थीं कि एक दिन अचानक सप्तर्षिगण लोग सप्तर्षियों के घर आ पहुँचे ! महारानी उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो उठी। स्वयं उसने का हार्दिक स्वागत किया। आसन पाद्य अर्घ्य आदि से उनकी षोडशोपचार राजोपचार विधि से पूजा की ओर उन्हें सुमधुर पकवानों के भोजन से परितृप्त कर दिया।

सज्जनों ! सप्तर्षियों ने कहा महारानी ! हम प्रसन्नाति प्रसन्न हैं, जो चाहो, सो बर माँग लो। पुरुकुत्सानी ने कहा महापुरुषों ! आपसे क्या गुप्त है ? महाराज को शत्रुओं न कहीं पर छिपा रखा है या इस लोक से ही सर्वथा उठा दिया हैं, कुछ पता नही चलता। उनके बिना राज्य नहीं चलता। राज्य में अराजकता छा गयी है। मेरे कोई भी पुत्र नहीं है। चाहते हुए भी अब तक दैव ने सुलभ नहीं किया, जो आज इस राज को संभाल लेता। किसी तरह मैं यह राज्य शासत चला रही हूं पर, संभल नहीं सकता।

सज्जनों ! सप्तर्षियों ने कहा महारानी हम समझ गए कि आज तुम्हारा राज्य संकट में है। तुम्हारी चिरकालीन पुत्रलिप्सा भी अपूर्ण हैं। महाराज का भी पता नहीं। अतः मैथुनज संतान की आशा ही कहाँ ? हाँ शास्त्रों में दो प्रकार की और सृष्टियाँ बताई१ चरुसृष्टि और २ मानस सृष्टि। तुम शीघ्र ही इन्द्रावरुण के प्रीत्यर्थ यज्ञ करो। वे तुम्हें चरू देंगे। जिससे निश्चय तुम्हारी पुत्रलिप्सा पूर्ण होगी। सप्तर्षि आशीर्वाद देकर चले गये। महारानी ने इन्द्रावरुण के प्रीत्यर्थ यज्ञ किया। अन्त में अग्निनारायण ने स्वयं सन्तुष्ट होकर पुत्रप्रद चरू महारानी को दिया। महारानी ने भक्तिभाव से उसे भक्षणकर व्रत रहने लगी।

सज्जनों ! कुछ दिनों के बाद महाराणी को अत्यन्त प्रभावशाली पुत्र हुआ। जिसका नाम त्रसदस्यु रखा गया। कुछ ही दिनों में उसने अपने दिव्य गुणों का विकास करके पिता के अभाव में राज्य में व्यापी हुयी अराजकता को खतम करके राज्य को संपूर्णतया अपने नियन्त्रण में कर लिया और अपने पिता को खोज निकाला और अपने राज्य पर अधिष्ठित कर दिया।

सज्जनों ! एक वार स्वर्ग में भी असुरों का उत्पात बढ़ गया तो देवराज इन्द्र ने इन्हीं महावीर त्रसदस्यु की सहायता माँगी, तो वह स्वर्ग पहुँचे ।

सारे असुरों को पराजित कर देवेन्द्र को आश्वासन दिया । उसके फलस्वरूप देवराज ने देव सभा सुधर्मों में उन्हें सर्वोच्च सम्मान स्वरूप माना गया और आधा सिंहासन दिया और अर्ध्यदेव की बहु-मूल्य पदवी से विभूषित किया गया ।

सज्जनों ! इस प्रकार साधुओं के दर्शन मात्र से ही विपदाएँ भाग जाती हैं ! पुरुकुत्स की रानी ने समागत ऋषियों के पूजन से पुत्र पाया ।

आजु धन्य मैं सुनहुँ मुनीसा । तुम्हरे दरश जाँहि अध खीसा ।
बड़े भाग पाइव सतसंगा । विनहिं प्रयास होंहि भवभंगा ।।

और उनकी सारी विपत्ति भी नष्ट हो गयी थी । महाकुंभ पर्व पर एक नहीं, परन्तु अनेक सन्त महन्त आदि के दर्शन होते हैं, जिनके दर्शन और सत्संग से मनुष्य इहलोक और परलोक वना सकता है ।

सज़्जनों ! हमने पहले ही आपको कहा कि यह कुंभ का योग सूर्य चन्द्र और गुरु के संक्रमण द्वारा ही बनता है । अभी जो यहाँ इलाहावाद का याने प्रयाग राज का जो कुंभ आया है वह किस प्रकार बनता है ? इसके संवंध में शास्त्रीय प्रमाण क्या है ? उस पर दृष्टिपात करें ।

प्रयागराज का महाकुम्भ योग

मकरे च दिवनार्थे वृषे राशिस्थिते गुरौ ।
प्रयागे कुम्भयोगो वै माघमासे विधुक्षये ।।

माघी अमावस्या को मकर राशि में सूर्य चन्द्र हो तथा मेष या वृषभ राशि में गुरु हो तो प्रयाग राज का महाकुंभ पर्व प्राप्त होता है । यहाँ भी लगता है कि १२ वर्ष वाली जिद्द को लेकर ही कभी यहाँ का पर्व मेष राशि के गुरु को छोड़कर वृष राशि के गुरु में होने लगा होगा । और तब मूल वाक्य में 'वृषराशिस्थिते गुरौ' वाला वाक्य जोड़ दिया गया होगा ।

सज्जनों ! हमने पहले ही आपको कहा है कि यह महाकुंभ पर्व का योग सूर्य चन्द्र और गुरु के संक्रमण द्वारा ही वनता है । अभी जो नासिक का महाकुंभ पर्व आया है वह किस प्रकार वनता है ? इसके संबंध में शास्त्रीय प्रमाण क्या है ? इसके ऊपर दृष्टिपात करें ।

नासिक का महाकुम्भ योग

सिंह राशि गते सूर्ये सिंह राशौ बृहस्पतौ ।
गोदावर्यां भवेत्कुम्भ : पुनरावृत्तिवर्जनः ।।

सिंह राशि में गुरु और सूर्य जव आते हैं तव गोदावरी तट याने नासिक तीर्थ का महाकुंभ पड़ता है ।

वास्तविकता में अविचार शील विद्वानों और साधुओं का यह प्रपंच हैं। परन्तु यह भी विचार करना आवश्यक है कि इस महान् पर्व के सम्बन्ध में केवल अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना करके जो संत महात्माओं के द्वारा यह दो-दो कुंभ की परिपाटी जो चालू की गई है वह वास्तविक में धर्म के निमित्त अधर्म का ही बोधक है। गीता जी में भगवान् ने श्री मुख से कहा है कि—

"न बुद्धि भेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ।"

केवल धर्म-कर्म के ही आस्तिक व्यक्तियों को प्यादें बनाये के यहाँ पर चौपट बाजी खेलने का प्रयत्न किया गया है वह वास्तविक नहीं परन्तु अधर्म का पोषक है। धर्म के ठेकेदारों को इतना तो वास्तविक विचार रखना आवश्यक है कि केवल अपने ही स्वाभिमान को बनाए रखना और धर्म के नाम पर लाखों श्रद्धालु व्यक्तियों का गला घोंटना यह परमार्थ नहीं, अपितु, अधर्म है।

सज्जनों ! यह परंपरा को बुद्धि के योग द्वारा सुकरता से मिटाकर एकत्व साधन इस घोर कलिकाल में अत्यावश्यक है। चाहे जगद्गुरु शंकराचार्यजी हों या महामण्लेश्वर जी महाराज हों ये सभी आद्यशंकराचार्य भगवान् के ही बालक हैं।

इन्होंने केवल धर्म रक्षा के सिवा अन्य कुछ भी बातें प्रशंसनीय नहीं। बारह वर्ष वाली स्थूल परंपरा से यह महापर्व ही नष्ट हो जायेगा। वैसे तो इन तीर्थों में कभी भी स्नान करने से पुण्य होता है। परन्तु महापर्व की विशेष महत्ता है। यदि शास्त्रीय परंपरा पर ध्यान नहीं देंगे। तो मुस्लिमों के 'मोहरम' त्योहार जैसा हाल हो जायगा और महाकुंभ जैसे महापर्वों के महास्नान को नष्ट करने का पाप उन धर्म के महान् ठेकेदारों पर चढ़ेगा। धर्माचार्य का कर्त्तव्य है कि स्वयं धर्माचरण करें। दो-दो कुम्भ की परंपरा चलाना इन विद्वज्जनों को आचार्यों को शोभास्पद नहीं। हमेशा सभी पर्व कुयोग से ही बनते हैं। व्यक्तिपात, वैधृत अमावस्या सूर्य-चन्द्र के ग्रहण आदि को शुभ दिवस नहीं कहा जायेगा। न इन दिनों में मांगलिक कार्य होते हैं। किन्तु पर्व की दृष्टि से इनमें दान पुण्य का विशेप महत्व है। इसी प्रकार सिंह का गुरु आदि से काल की दूषितता मानी गयी है।

सज्जनों ! इन कुम्भ पर्वों पर प्रयाग राज नासिक उज्जैन और हरिद्वार में स्नान दानादि की अतुलित महिमा है इसके सम्बन्ध में एक कथा याद आती है कि - एक ब्राह्मण और ब्राह्मणी थे। महाकुंभ पर्व आया। इसी से ब्राह्मण ने अपने पुत्र को कहा। भाई तू जा और अपनी बहू को ले आ। हमको महा कुंभ का स्नान करना हैं। ब्राह्मण बालक ससुराल के मार्ग पर चला। गाँव की सीमा में पहुँचा वहाँ उसके यजमान का खेत था ! एक गऊ ने खेत में जाने का मार्ग बनाया और खाने को बैठी। ब्राह्मण बालक को लगा कि यदि वैसे ही यजमान का खेत नष्ट हो जायगा तो हमको धान कैसे मिलेगा ? इसी से उसने गोहार लगाई और खेत वाले को बुलाया। दोपहर का समय था। खेतीहरि थका हुआ था। उसने जोर से पांच-सात लाठियाँ गऊ को मार दी। गऊ वहीं पर ही गिर गयी। मरते समय ब्राह्मण पुत्र को शाप दिया कि मैंने तेरा कोई कसूर नहीं किया। तो भी विनाकारण ही मृत्यु के साथ भेंट करा दी। इसका फल यही होगा कि तू स्वल्प समय में ही गधा होगा।

सज्जनों ! ब्राह्मण बालक घबड़ा गया उसने अपना अपराध स्वीकार किया और कहा कि हे गऊ माता मुझे क्षमा करें और किसी प्रकार से आप अपने शाप से मुक्ति दे । गाय को दया आगयी इसी से वह बोली जा तू अपनी बहू को ले आ, परन्तु; यदि तेरी बहू सारा कुंभ पर्व में सभी से पूर्व नदी में स्नान कर आयेगी तो तू मेरे शाप से मुक्त होगा । इतना कहकर गाय को मृत्यु हो गयी । ब्राह्मण का पुत्र अपने ससुराल गया । रात को अपनी पत्नी को सभी बात कही बात पूरी होने के साथ ही उनका देह गधे के रूप में एकाएक परिवर्तित हो गया । ब्राह्मण की पुत्री अपने माता-पिता को समझा बुझाकर गधे के साथ ससुराल आ गयी वहाँ सास श्वसुर को सभी बात कही वे लोग शोक में डूब गये । बहू को अपने मन में प्रभु पर विश्वास था और वचनों में श्रद्धा थी । वह प्रातः सभी से पूर्व ही प्रथम उठकर गधे को नदी के तट पर ले जाकर स्नान कराती थी । और प्रभु भजन करती हुयी घर आती थी । यहीं के राजा को बहुत रानियाँ थी । वे भी महाकुंभ के पर्व के कारण सबसे पहले सुबह स्नान के लिए आतो थीं परन्तु जहां देखे वहाँ पर पानी गन्दला होता था उन्होंने राजा से बात कहो कि नदी में किसी भी दिन स्वच्छ पानी ही नहीं होता । राजा ने रात को चौकीदार रखे और चौकीदारों ने देखा तो पहले सुवह में एक ब्राह्मणी आती है और गधे को स्नान कराती है ।

चौकीदारों ने राजा से यह बात कही राजा ने कहा कि जाओ और आज वह गधा लेकर आए तो गधे को यही खींचकर ले आओ और उसको बांध दो । राजा की आज्ञा से चौकीदारों ने सुबह नदी पर जाकर ब्राह्मणी के पास से गधा छीन लिया और राजा के महल में ले गए और ब्राह्मणी भो रूदन करती हुयी राजमहल में गयी और माथे को पटककर हृदयां फाड़ रूदन करने लगी । राजा आश्चर्य में डूब गया उसने पूछा बहिन तू यह गधे के लिए इतना रूदन क्यों कर रही है ? महाराज यह बात मैं यह महाकुंभ पूरा होने पर ही कहूँगी । अभी मेरा गधा मुझे वापिस दो । राजा समझदार था, ब्राह्मणी के बात का कुछ भेद समझा और उसका गधा वापिस दे दिया ! महाकुंभ पूरा हुआ ब्राह्मणी ने घो का दीया जलाया और प्रार्थना की कि हे प्रभु, हे गौ माता मैंने अपने पति की सेवा की हो तो मेरे पति को शाप से मुक्त करो । इतना कहते ही वह गधा उसके पति के रूप में परिवर्तित हो गया । सारा गाँव विस्मित हो गया, राजा ने यह बात जानी और पति सेवा और धर्म की भावना की प्रशंसा को, कि महाकुंभ की इस स्नान की यह उत्तमता आपको इस कथा के द्वारा दिखाई । इससे आपको ज्ञात हो गया होगा कि महाकुंभ पर्व की क्या श्रेष्ठता है । जैसे आजकल यह नूतन शिक्षा के कारण प्रायः जन समाज में से धार्मिक वृत्ति क्षीण होती हुयी दिखाई पड़ रही है ! वैसा भारत सम्राट् शिलादित्य हर्षवर्धन के समय में भी एक वार हुआ था । इसो कारण सम्राट् हर्षवर्धन ने अथाह प्रयत्न के साथ फिर से यह महाकुंभ की जीर्ण-शीर्ण परम्परा को नव पल्लवित करने का सर्व प्रथम प्रयत्न करके भग्न होती हुयी धर्मध्वजा को पुनः ऊंचे उठाथा । तभी से महाराज हर्षवर्धन कुंभ या अर्द्ध कुंभी पर प्रयागराज अवश्य आते थे । सम्राट् सबके ठहरने की और भोजन की व्यवस्था अपनी ओर से करते थे । एक मास तक निरन्तर धर्म चर्चा चलती रहती थी ।

सज्जनो ! यह भी स्मरण रहना जरूरी है कि हर्षवर्धन ने कभी अपने को राजा नहीं माना । वे अपनी बहिन राज्यश्री का प्रतिनिधि ही मानते थे । तपस्विनी राज्यश्री का कहना था—'प्रयागराज की यह पावन भूमि तो महादान की भूमि है । इसमें से कुछ भी घर लौटा ले जाना अत्यन्त अनुचित

है' वह मोक्ष सभा का प्रथम आयोजन था। हर्ष ने सर्वस्व दान की घोषणा करदीं थी। राज्यश्री ने भी सर्वस्व दान कर दिया था। धन, रत्न, आभूषण, वस्त्र, वाहन आदि सब कुछ दान कर दिया गया। शरीर पर पहिनने के वस्त्र तक राज्यश्री ने सेवकों को दे दिए। लेकिन उसे तब चौंकना पड़ा जब उसके भाई सम्राट हर्ष केवल धोती पहने विना उत्तरीय के "अनाभरण उसके सामने आए और बोले बहिन! हर्ष तुम्हारा राज्य सेवक है और यह अधोवस्त्र भी नापित को देने का संकल्प कर चुका है। अपने इस सेवक को एक वस्त्र नहीं दोगीं ?

सज्जनों! राज्श्री के नेत्र भर गए। उसके शरीर पर भी एक साड़ी ही बची थी उसने ढूढ़ा तो शिविर में एक फटा फूटा पुराना वस्त्र पड़ा हुआ मिल गया था वह इसलिए बचा हुआ पड़ा मिल गया कि फटकर चिथड़ा हो गया था। किसी को देने योग्य नहीं रहा था। वह चिथड़ा हर्ष ने बड़े हर्ष के साथ ले लिया और उसे लपेट कर धोती नापित को दी।

सज्जनो! इसके पीछे तो यह परम्परा बन गई। प्रति छठें हर्षवर्धन सर्वस्व दान करते थे और वहन राज्यश्री से एक फटा चिथड़ा मांग कर लेते थे। कटि देश में वह चिथड़ा लपेटे वह भारत का सम्राट नग्न देह कुंभ की भरी भीड़ में पैदल अपनी वहन के साथ जब विदा होता था उस महादानी की शोभा क्या सुरों को भी स्वप्न में मिलनी शक्य है।

सज्जनो! बाद में वह चिथड़ा भी हर्ष के पास रहने नहीं पाता था। प्रयाग के उस संगम क्षेत्र से बाहर निकलते ही कोई न कोई नरेश आगे आ जाता। सम्राट! आपने सर्वस्व दान कर दिया है।

आप का यह कटि वस्त्र पाने की कामना के लिए आया है यह आपका सेवक! राजाओं के स्नेह पूर्वक मिले उपहार तो सम्राट को स्वीकार करने ही थे वह कटि वस्त्र जिसे मिलता वह अपने को कृतार्थ एवं परम सम्मानित मानता।

इसलिए सज्जनों! यह महाकुंभ पर्व पर प्रत्येक मानव मात्र को अपनी शक्ति के अनुसार तन मन आदि का दान देना परम श्रेष्ठ माना जाता है। यह महाकुंभ के निमित्त दान किया हुआ एक नया पैसा भी महान् पुण्यदायी होता है। इसी से खुले दिल से यह पर्व पर अवश्य दान देना चाहिए।

सज्जनों! यह कुंभ मेले के महान् पर्व को केवल बड़े मेले अथवा शारीरिक पापों के उपाय तक ही समझ लेना सनातन धर्म के महान उद्देश्यों को और जीवन के लक्ष्यों को तुच्छ बना देने के समान होगा। वस्तुतः प्राचीन ऋषि-महर्षि एवं देश के प्रत्येक प्रान्तवासी कुंभ पर १२ वर्षों के बाद देश की राजकीय-सामाजिक-आर्थिक एवं धार्मिक त्रुटियों पर विचार विमर्श कर अनिवार्य निर्णय लेने का सुअवसर समझते थे।

सज्जनों! हमने पहले ही आपको कहा है कि यह महाकुंभ का योग सूर्य-चन्द्र और गुरु के संक्रमण द्वारा ही बनता है। अभी जो उज्जैन का महाकुंभ पर्व आया है वह किस प्रकार बनता है? इसके सम्बन्ध में शास्त्रीय प्रमाण क्या है? उसके पर दृष्टिपात करें।

उज्जैन का महाकुंभ योग

मेष राशिगते सूर्ये सिंह राशौ बृहस्पतौ ।
उज्जयिन्यां भवेत्कुम्भः सर्व सौख्य विवर्द्धनः ।।
मेष राशि गते सूर्ये सिंहराशौ वृहस्पतिः ।
कुम्भ योगः सवितेयां मुक्ति प्रदायकः ।।
सिंह राशि गते जीवे मेषस्थे च दिवाकरे ।
माधवे धवले पक्षे सिंहे जीवत्वजे रवौ ।।

मेष राशि में सूर्य और सिंह राशि में वृहस्पति में उज्जैन में महाकुंभ पर्व का निर्णय शास्त्र में दिया हैं ।

हरिद्वार का महाकुंभ पर्व

सज्जनों ! हमने पहले ही आपको कहा है कि यह कुंभ महापर्व का योग सूर्य चन्द्र और गुरू के संक्रमण द्वारा ही बनता है । अभी जो हरिद्वार का महाकुंभ पर्व आया है वह योग किस प्रकार बनता है ? उसके सम्बन्ध में शास्त्रीय प्रमाण क्या है ? उसके ऊपर दृष्टिपात करें ।

कुम्भ राशि गते जीवे यद्दिने मेषगोरविः ।
हरिद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृत्ति वर्जनम् ।।
पद्मिनो नायके मेषेकुम्भ राशिगते गुरौ ।
गंगा द्वारे भवेद्योगः कुम्भनामातदोत्तमैः ।।

कुम्भ राशि में गुरू और मेष राशि में सूर्य के आगमन पर ही हरिद्वार के महाकुंभ पर्व का निर्णय शास्त्रों में दिया है ।

देश का सामान्य जन दुःख और पीड़ा से त्राहि-त्राहि कर रहा है । जिस देश में दूध-घी की नदियाँ बहती थी अब वहाँ पर खून की नदियाँ वह रही है । महंगाई और दरिद्रता से बिलखतो हुयी देश की जनता विद्रोह पर उतर आयी है । अत्यन्त खेद की बात है कि धर्म निरपेक्षिता के नाम पर धर्म को समाप्त किया जा रहा है । देश जल रहा है है । रोम देश के जलने पर उसका सम्राट् नोरो वीणा बजा रहा था । वैसे ही यहाँ के कर्णधार अपनी ही तान में मस्त हैं । इससे अधिक कौन सी खेद की बात हो सकती है । धन्य हैं स्वामी विवेकानन्द जी जिन्होंने कहा था कि "मैं मोक्ष नहीं चाहता ।" यदि एक भी बन्धन में पड़ा हुआ कोई आदमी मेरे देश में या दुनिया में है और उसको उठाने के लिए मेरी आवश्यकता हो तो मैं बार-बार जन्म लेना पसन्द करूंगा ।

बाँदी मेरी तलवार ला रानी ने कहा और मेरे साथ चल। मैं स्वयं महारावल की लाश शाहजहाँ के किले से निकाल कर ले आऊँगी। रानी ने सैनिक का वेष बनाया। तलवार हाथ में ले ली और अन्तः-पुर की सभी नारियों ने भाले बरछी सम्भालें। दौड़ते हुये रामसिंह ने आकर कहा। मेरे जीवित रहते तुम्हें महल से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। पूज्यपाद चाचा के निष्प्राण शरीर की रक्षा एवं उनकी अन्त्येष्ठी मेरा पावन धर्म है। इसके लिए मैं अपना प्राण दे दूँगा। रोते-रोते रानी ने आशीष दी, बेटे जा महिष मर्दिनी दुर्गा माँ तेरी रक्षा करेगी। रामसिंह ने कहा चाची रोवो मत! ऐसा कहकर घोड़े को ऐड़ लगाते हुये मैं अभी ही चाचा जी के शव के साथ लौटता हूँ। रामसिंह अमरसिंह के बड़े भाई जसवन्त सिंह के एकमात्र पुत्र था। वह भी वय में पन्द्रह साल के ही थे। अपने पिता और चाचा की भाँति ही वीर पराक्रमी भी थे। वह शाहजहाँ के दुर्ग की ओर दौड़ा दुर्ग का द्वार खुला था। तीर की भाँति वह नवयुवक अश्वारोही अकेला ही उसको पार करके भीतर चला गया। द्वार रक्षक उसें पहचान भी नहीं सके। बुर्ज के निकट सैकड़ों मुस्लिम सैनिक तैयार थे। युद्ध छिड़ गया। मुंह में लगाम पकड़े हुये पन्द्रह वर्ष के वीर बच्चे ने जिधर दोनों हाथ उठांये उधर ही शत्रु लौटते दीखें। अन्ततः वह बुर्ज पर चढ़ गया। मृतक अमरसिंह चाचा के शव का वन्दना करके पूज्य चाचाजी का शव उठाया, बुर्ज से उतर कर घोड़े पर बैठा। पुनः वहीं पर युद्ध हुआ। पर तेजस्वी बालक का अनेक सैनिक मिलकर भी कुछ अनिष्ट नहीं कर सके। वे देखते ही रह गए और रामसिंह शव के साथ दुर्ग से बाहर निकल गया। महल में चिता पहले से ही तैयार थी। रानी ने कहा बेटा तूने मेरी सम्मान और प्रतिष्ठा एवं धर्म की रक्षा की है चरणों में गिरे हुये रामसिंह को उठाकर अत्यन्त स्नेह से उसके शीश पर हाथ फेरती हुयीं रानी ने आशिष दिया कि वैसे ही भगवान् तेरी रक्षा करे और रानी पति के साथ चिता में प्रविष्ट हो गयी। रामसिंह नेत्रों में आँसू भरे हुए चुपचाप देखता ही रहा। वह क्या बोले वाणी रुद्ध हो गई थी माता स्वरूप चाची की अन्तिम इच्छा पूर्ण करके रामसिंह जी आज इतिहास के पन्ने पर अमर हो गए हैं।

इस प्रकार माता-पिता के परम भक्त श्रवण कुमार पुण्डरिक आदि अनेक कथानक हैं जिनको अपनी माता-पिता की भक्ति के कारण ही भगवान् को बिना बुलाये भी आना पड़ा है।

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो ।
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ॥

गतो भक्तयुद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा ।
त्रयाणां रक्षायैत्रिपुरहर ? जागर्त्ति जगताम् ॥

आनन्दमन्थरपुरन्दर मुक्त माल्यम् ।
मौलौहठेन निहितं महिषासुरस्य ॥

पादाम्बुजं भवतु नो विजयाय मञ्जु ।
मंञ्जीरसिञ्जित् मनोहरमम्बिकायाः ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

हरिः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

॥ इति सदा शिवम् ॥